प्रकाशक :
मंत्री, अखिल भारत सर्व-
राजघाट, काशी

पहली बार : ५,०००
जनवरी, १९६०
मूल्य : बासठ नये पैसे
(दस आना)

मुद्रक :
ओमप्रकाश कपूर,
ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी (बनारस) ५६११-१६

प्रस्तावना

देश में जितनी प्रवृत्तियाँ चल रही हैं, उनमें वर्तमान शिक्षा-पद्धति ही ऐसी प्रवृत्ति है, जिससे कतिपय रूढ़िग्रस्त शिक्षा-शास्त्रियों के अलावा प्रायः सभी लोगों—राष्ट्रपति से लेकर सड़कों पर चलनेवाले नागरिक तक—को असंतोष है। शिक्षा की आकांक्षा जितनी सर्वव्यापी बन रही है, वर्तमान के प्रति असंतोष भी शायद उससे अधिक तीव्रता के साथ फैल रहा है। ऐसे अवसर पर आज के प्रायः सभी चिंतनशील व्यक्ति विकल्प की खोज में लगे हैं।

आश्चर्य की बात यह है कि यद्यपि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी नयी तालीम के रूप में एक सुचिंतित तथा सुनियोजित शिक्षा-प्रणाली राष्ट्र के सामने रख गये हैं, फिर भी देश के शिक्षा-विशारद उसे पूर्ण रूप से न अपनाकर इधर-उधर भटक रहे हैं।

इसका कारण यह है कि वे यह नहीं समझ रहे हैं कि शिक्षा-पद्धति समाज-व्यवस्था के आधार पर ही बन सकती है। आज की पूँजीवादी अर्थनीति तथा मैनेजरवादी राजनीति के संदर्भ में गांधीजी की नयी तालीम निखर नहीं सकती। इसे अपनाने के लिए सामाजिक मान्यताएँ बदलनी होंगी, तभी शिक्षा-शास्त्री तथा जनता को समाधान मिल सकता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि देश के विचारक परिवर्तन के लिए अपने चिंतन में शिक्षा और समाज को अभिन्न मानें।

भाई रामाश्रय दीक्षित ने उपर्युक्त विचार को इस नाटक के माध्यम से अत्यन्त सरल तथा कलापूर्ण ढंग से देश के सामने रखा है। अगर गाँवों के युवक इसे व्यापक रूप से अपनायें, तो भारत के लिए अति आवश्यक तालीम की शिक्षा सर्वजन-सुलभ हो जायगी और लेखक का श्रम सार्थक होगा।

साधना-केन्द्र, काशी
१४-१२-'५९

धीरेन्द्र मजूमदार

पात्र-परिचय

१. आलोक	एक एम० ए० नवयुवक, चरित्र-नायक।
२. श्याम	एक शिक्षित नवयुवक, आलोक का साथी।
३. शिवदीन	आलोक के गाँव का एक पिछड़ी जाति का नागरिक।
४. देवीदीन	शिवदीन का लड़का।
५. रामदत्त	आलोक के गाँव का एक रूढ़िवादी नागरिक।
६. मंगली	आलोक के गाँव का एक कोढ़ी।
७. राजनाथ	एक पथभ्रष्ट विद्यार्थी।
८. दिनेशचन्द्र	राजनाथ का सहपाठी और मित्र।
९. दिवाकरप्रसाद	राजनाथ का पिता।
१०. शिवनाथ	राजनाथ का भाई।
११. प्रमोद	शिवनाथ का लड़का।
१२. रामचरण	दिवाकरप्रसाद का नौकर।
१३. पूर्ती	रामचरण का लड़का।
१४. महात्माजी	लोक-सेवा-भावना से ओतप्रोत एक सुधारक।
१५. सुपरिण्टेण्डेण्ट	भूतपूर्व अंग्रेज सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस।
१६. कलेक्टर	भूतपूर्व अंग्रेज कलेक्टर।
१७. अखबारवाला	

नोट—रंगमंच पर जिन्हें कुछ बोलना नहीं है, उनका परिचय नहीं दिया गया है।



प्रथम अंक

रंगमंच

दृश्य	पात्र	सामग्री
प्रथम	राजनाथ, दिनेशचन्द, महात्माजी, रामचरण	तिरंगा झण्डा, बाँस, डोरी, फूल, पटाखे
द्वितीय	कलेक्टर, सुपरिण्टेण्डेण्ट	एक मेज, तीन कुर्सियाँ उपयुक्त पोशाक, दो कप चाय
तृतीय	राजनाथ, दिनेशचन्द, दिवाकरप्रसाद, शिवनाथ, प्रमोद	एक पुस्तक
चतुर्थ	आलोक, महात्माजी	कुछ चरखे
पंचम	दिवाकर प्रसाद, रामचरण, दिनेशचन्द, राजनाथ, शिवनाथ	माला (जपनेवाली), लोटा, आसनी, तीन तश्तरियों मे साबूदाना, हलवा, रबडी, एक पिस्तौल मयकारतूस, नोटों का बण्डल, एक गट्ठर
षष्ठ	आलोक, शिवदीन, देवीदीन, रामदत्त	दो फावडे, एक पल्ला, दो झाड़ू
सप्तम	दिनेशचन्द, राजनाथ, अखबारवाला, शिवनाथ, दिवाकरप्रसाद	कुछ अखबार

प्रथम दृश्य

[एक गाँव में सभा का आयोजन। गड़े बाँस के ऊपरी सिरे पर फहराने के लिए तिरंगा झण्डा लपेटा हुआ है। बड़ी ही चहल-पहल है। मंच पर राजनाथ, दिनेशचन्द, रामचरण खड़े हैं।]

राजनाथ—बोलो, भारतमाता की…

सब—जय !

राजनाथ—महात्मा गांधी की…

सब—जय !

राजनाथ—जवाहरलाल नेहरू की…

सब—जय !

राजनाथ—[रामचरण से] डोरी ठीक कर दे।

[रामचरण डोरी ठीक करता है]

[एक खद्दरधारी महात्मा का प्रवेश]

राजनाथ—[हाथ जोड़कर] प्रणाम बाबा !

महात्माजी—प्रसन्न रहो बेटा, क्या हो रहा है ?

राजनाथ—आजादी के स्वागत की तैयारी।

महात्माजी—शाबाश।

राजनाथ—समय से आ गये बाबा, अब आप झण्डा फहरा दीजिये।

महात्माजी—[मुस्कराकर] अच्छा।

[झण्डा फहराया जाता है, करतल-ध्वनि से आसमान गूँज उठता है। दोनों लड़के बारी-बारी से बड़ी तेज आवाज करनेवाले स्पार्क पटाखे छोड़ते हैं।]

महात्माजी—तुमने तो बन्दूकें मात कर दीं बेटा।

राजनाथ—झण्डे को सलामी देनी थी बाबा, तो क्या घटिया पटाखे लाते, तोपों की जगह काम लेना था न।

महात्माजी—[मुस्कराकर] ठीक।

राजनाथ—बाबा, कितनी अच्छी होगी हमारी आजादी।

महात्माजी—बहुत अच्छी होगी बेटा।

राजनाथ—आजादी में आलीशान कोठी होगी, जिसमें पड़े होंगे स्प्रिंगदार पलंग। उन पर भी बड़े ही मुलायम मखमली गद्दे, जिन पर लेटेंगे हम।

महात्माजी—हूँ!

राजनाथ—जी, कोई झल रहा होगा पंखा, कोई चाप रहा होगा पैर। सारे सुख हाथ जोड़े सामने खड़े रहेंगे।

दिनेशचन्द्र—सुखों की तो फुलवारी ही खिली रहेगी बाबा। और हमारा काम होगा इसी फुलवारी में टहलना, इसीमें मौज लेना।

रामचरण—हमारा भी भूखा पेट भरेगा बाबा, नंगा तन ढँकेगा, हमारी भी कुटिया महल बनेगी, हमारी भी दुनिया महक उठेगी।

राजनाथ—अच्छा, तू भी देखता है ऐसे स्वप्न ? छोटे मुँह बड़ी बात।

महात्माजी—आजादी सुखों की फुलवारी होगी ही, जो सबको सुख देगी, पर यह फुलवारी हम सबको ही तो लगानी पड़ेगी।

दिनेशचन्द्र—जरूर।

महात्माजी—इसके लिए जमीन बनानी पड़ेगी, पौध लगानी पड़ेगी। उसकी सिंचाई-गोड़ाई करनी पड़ेगी, परवरिश करनी पड़ेगी, तब कहीं यह फुलवारी खिलेगी।

दिनेशचन्द्र—जरूर।

महात्माजी—इसके लिए कठोर श्रम करना होगा, घोर तप करना होगा। तब कहीं, हिन्द सदा···

सब—आजाद रहेगा।

महात्माजी—वीरों से···

सब—आबाद रहेगा।

महात्माजी—भगवान् हमारे देश को इतनी शक्ति दे, इतनी बुद्धि दे बेटा, जिससे वह सदा आजाद बना रहे. वीरों से आबाद बना रहे। आओ, हम सब इसके लिए परमात्मा से प्रार्थना करें।

दिनेशचन्द्र—जरूर।

[आगे-आगे महात्माजी गाते हैं, पीछे सब दोहराते हैं]

प्रार्थना

रघुपति राघव राजा राम।
पतित पावन सीता राम॥
ईश्वर अल्ला तेरे नाम।
सबको सन्मति दे भगवान॥

महात्माजी—बोलो भारतमाता की···

सब—···जय!

महात्माजी—महात्मा गांधी की···

सब—···जय!

—पटाक्षेप—

द्वितीय दृश्य

[कलेक्टर का बंगला, कलेक्टर बरामदे मे गम्भीर मुद्रा मे बैठे है। सुपरिंटेण्डेण्ट आते है, दोनों अंग्रेज है।]

कलेक्टर—[हाथ मिलाते हुए] आइये-आइये, कहिये 'बिस्टर' बाँधकर रख आये ?

सुपरि०—[बैठते हुए] क्या बताऊँ साहब, मैं तो स्वप्न में भी नहीं सोचता था कि ऐसा दिन भी देखना पड़ेगा।

कलेक्टर—हाँ, इतिहास मे तो कभी हुआ नहीं ऐसा।

सुपरि०—हम लोग हिन्दोस्तान छोड़कर जा रहे हैं, एक आह तो निकल ही आती है यह सोचकर।

कलेक्टर—जरूर।

सुपरि०—हिन्दोस्तान अंग्रेजों की गुलामी से तो छूट गया, पर अंग्रेजियत की गुलामी से कभी भी नहीं छूट सकता।

कलेक्टर—हूँ !

सुपरि०—जी हाँ, लार्ड मेकॉले साहब हिन्दोस्तान के खून में, उसकी नस-नस में अंग्रेजियत की वह जड़ जमा गये हैं कि चाहे सौ गांधी जनमें, उसे हिला नही सकते।

कलेक्टर—हाँ, उन्होंने हिन्दोस्तानियों को अन्दर से अंग्रेज तो बना ही दिया। राष्ट्रीय चेतना भी सुला देनी चाही, पर··

सुपरि०—राष्ट्रीय चेतना थी ही कब इस देश मे ?

कलेक्टर—हूँ !

सुपरि०—जी हाँ, इस देश के इतिहास के पन्ने उलटकर देख लीजिये, कहीं पता नहीं।

कलेक्टर—अच्छा !

सुपरि०—जी हाँ, अनोखी वीरता मिलेगी, पर वह कहीं जूझती दिखाई देगी किसी जातिविशेष पर, कहीं किसी धर्म-विशेष पर। कहीं जूझती मिलेगी देश के ही किसी भूभाग पर, उसे ही अपनी मातृभूमि मानकर।

कलेक्टर—हाँ।

सुपरि०—पर वह संगठित होकर देश-हित पर कभी भी नहीं जूझी।

कलेक्टर—ऐं !

सुपरि०—जी हाँ, अपने देश पर हमारा राज्य स्थापित होते देख कुछ हमसे लड़ने लगे, जूझने लगे।

कलेक्टर—अवश्य।

सुपरि०—किन्तु उनके विरोधी हमसे आ मिले, अपने ही देश-भक्तों को मिटाने लगे। यों इन हिन्दोस्तानियों ने हिन्दोस्तान जीतकर हमें दे दिया। ऐसी रही यहाँ की राष्ट्रीय चेतना।

कलेक्टर—हाँ, ऐसा तो हुआ ही।

सुपरि०—[मुस्कराकर] क्या आप अपने देश में एक भी ऐसा व्यक्ति सह सकेंगे ?

कलेक्टर—ऐसा अमंगल न बोलिये। ईश्वर न करे, ऐसे नीच, ऐसे देशद्रोही अपने देश में जन्म लें।

सुपरि०—पर हिन्दोस्तान ने ऐसे नीच न केवल जनमाये, न केवल सहे, बल्कि उनका साथ भी दिया।

कलेक्टर—फिर भी वह स्वतंत्र हो गया। [घंटी बजाता है]

सुपरि०—पर एक बात है।

कलेक्टर—क्या ? [चपरासी आने पर] चाय लाओ।

[चपरासी जाता है]।

सुपरि०—राजकाज चलाने के लिए जरूरत थी कुछ नौकरों की, तो मेकॉले साहब के सुझाव के अनुसार यहाँ शिक्षा का कुछ ऐसा ढंग अपनाया गया कि इतने ही पढ़ सकें, अधिक नहीं।

कलेक्टर—जरूर।

सुपरि०—अब स्थापित होगा यहाँ लोकतंत्र, तो होगा शिक्षा का प्रसार।

कलेक्टर—वह तो होगा ही।

सुपरि०—तब यहाँ पढ़े-लिखों की संख्या बढ़ने लगेगी—बरसाती मेढकों की तरह।

कलेक्टर—जरूर।

सुपरि०—यह संख्या अपने ही देश के लिए बन जायगी एक समस्या, एक चिन्ता।

कलेक्टर—क्यों?

[चपरासी चाय लाता है। दोनो पीते-पीते बात करते हैं।]

सुपरि०—मेकॉले साहब के चलाये स्कूल-कॉलेज क्या हैं, हुजूर बनाने के कारखाने। ऐसे हुजूर, जो अपने बाप को भी मजदूर बनाने में संकोच न करें।

कलेक्टर—जरूर।

सुपरि०—मेहनत से नफरत करनेवाले ये निकम्मे हुजूर, न कर सकेंगे खेती, न कोई अन्य उद्योग। ये तो केवल नौकरी की तलाश करेंगे।

कलेक्टर—नौकरी भला सबको कहाँ से मिल सकेगी?

सुपरि०—और नौकरी न मिलने पर सच मानें आप, पता नहीं क्या-क्या करेंगे ये।

कलेक्टर—[मुस्कराकर] हैं!

सुपरि०—जी हाँ, तब हम सुदूर-देशवासी, इन भारतीय सपूतों

की करतूतें देख-सुनकर कहेंगे—हिन्दोस्तान! आजादी का मजा लूट।

कलेक्टर—अच्छा, तब क्या आप सोचते हैं कि हिन्दोस्तान 'आपको याद करेगा?

सुपरि०—याद भी करे तो क्या, बाकी ही क्या रखा है यहाँ, जिसे लूटने दौड़े आयेंगे हम।

कलेक्टर—पर यह भी तो सोचिये, जिस गांधी ने एक आश्चर्य के बीच हमसे हुकूमत छीन ली, वह बुड्ढा इस ओर भी कुछ सोच ही चुका होगा। ऐसा नहीं कि यह खतरा उसकी दृष्टि से ओझल हो गया हो।

सुपरि०—जी!

कलेक्टर—निश्चय ही वह तालीम का यह ढंग बदल देगा और कोई नयी ही तालीम चलायेगा।

सुपरि०—[आह भरकर] ओफ!

कलेक्टर—अच्छा, तो कुछ दिन ठहरकर चलियेगा या तुरत?

सुपरि०—चार्ज दिया कि चला। आप?

कलेक्टर—मैं भी।

सुपरि०—तब ठीक, साथ ही चलेंगे।

कलेक्टर—अवश्य।

सुपरि०—[खड़े होकर] अच्छा, अब···

[कलेक्टर खड़े होकर हाथ मिलाते हैं, सुपरिण्टेण्डेण्ट जाते हैं।]

—पटाक्षेप—

तृतीय दृश्य

[राजनाथ कमरे में बैठा एक उपन्यास पढ़ रहा है, अंग्रेजी वेशभूषा में दिनेशचन्द का प्रवेश ।]

राजनाथ—[उठकर] गुड मार्निङ्ग मिस्टर दिनेश !

[हाथ आगे बढ़ाता है]

दिनेशचन्द—[हाथ मिलाते हुए] गुड मार्निङ्ग मिस्टर आर० एन०, गुड मार्निङ्ग ।

[दोनों बैठ जाते हैं]

दिनेशचन्द—जान पड़ता है, एक्जामिनेशन का भूत सवार हो गया सिर पर ।

राजनाथ—अजी नहीं मिस्टर, यह तो एक नावेल पढ़ रहा था—आना केरेनिना ।

दिनेशचन्द—ओ यस, रिटिन बाइ टॉल्स्टॉय ।

राजनाथ—[उपन्यास देते हुए] यस ।

दिनेशचन्द—[उपन्यास लेकर] वंडरफुल नावेल !

[पन्ने उलटता-पुलटता है]

[कुछ-कुछ अस्वच्छ-से कपड़े पहने प्रमोद का प्रवेश]

प्रमोद—[राजनाथ से सटकर बैठकर] चाचाजी, यह किताब…

राजनाथ—[प्रमोद के एक चाँटा मारकर] भग यहाँ से ।

[प्रमोद चम्पत हो जाता है]

दिनेशचन्द—यह कौन था ?

राजनाथ—यहीं पड़ोस का है, बड़ा नटखट है ।

[इसी समय बाहर से आते शिवनाथ दिखाई देते हैं]

दिनेशचन्द्—ये कौन ?

राजनाथ—यह मेरा सर्वेण्ट है, वेरी गुड, फेथफुल।

[शिवनाथ आ जाते हैं]

शिवनाथ—[राजनाथ से] रञ्जन, भैंस छाया में बाँध दो, उसके नीचे बहुत-सा गोबर-कूड़ा पड़ा है, उसे भी साफ कर दो। अच्छा नहीं लगता। [अन्दर जाते हैं]

दिनेशचन्द्—वाह रे वेरी गुड, फेथफुल सर्वेण्ट। मालिक को ही आर्डर देने लगा।

राजनाथ—पता नहीं, आज क्या हो गया इसे, जो इतनी बड़ी बदतमीजी कर बैठा।

दिनेशचन्द्—[उपन्यास रखकर] अच्छा, अब चलूँगा मिस्टर।

राजनाथ—अरे नहीं, आज तो आप मेरे गेस्ट रहें ही।

दिनेशचन्द्—नहीं मिस्टर, आज टाइम नहीं, फिर कभी।

राजनाथ—कार कहाँ ?

दिनेशचन्द्—सड़क पर, कुएँ के पास। अभी पहुँचता हूँ आध घण्टे में। अच्छा अब··

[राजनाथ हाथ मिलाता है, दिनेश जाता है।]

शिवनाथ—[अन्दर से आकर] भैंस बाँध दी ? [राजनाथ चुप] बाँध दो भैया, बेचारी हाँफ रही है, दूध-घी खिलाती है हमें, तुम्हें। [थोड़ी देर प्रतीक्षा कर] मै ही बाँधे देता हूँ, झाड़ू कहाँ है ? [उत्तर न पाने पर चले जाते है]

शिवनाथ—[थोड़ी देर मे आकर] रञ्जन, तुम्हारे ये ढंग अच्छे नहीं। इस प्रकार भला कब तक निभेगी ?

राजनाथ—मैं कुछ कहना नहीं चाहता। भैया, आप विवश न करें।

शिवनाथ—ऐं !

राजनाथ—जी, मै पूछता हूँ, निभ ही कहाँ रही है ?

शिवनाथ—क्या कह रहे हो रज्जन ?

राजनाथ—ठीक कह रहा हूँ। मै आपका छोटा भाई हूँ, गुलाम नहीं हूँ।

शिवनाथ—तो तुम्हें गुलाम समझता कौन है ?

राजनाथ—गुलाम से भी गया-बीता।

शिवनाथ—रज्जन, अब तुम निरे बच्चे नही, सयाने हो, पढ़े-लिखे हो, समझ-बूझकर बोलो।

राजनाथ—मेरे पास समझ कहाँ भैया ? मैं भी चार पैसे कमाता होता, तो समझदार होता।

शिवनाथ—इतने निराश क्यो हो रहे हो ? बी० ए० कर लो, तुम्हारी भी नौकरी लग जायगी। भगवान् चाहेगा, तो मुझसे भी अच्छी।

राजनाथ—और तब तक यों ही मिट्टी-कूड़ा बनकर जिऊँ ?

शिवनाथ—आज तुम यह सब कह क्या रहे हो ?

राजनाथ—बस, अब अधिक न कहलवाइये। आप कानूनगो हैं, तो मैं कोई पटवारी नहीं हूँ।

शिवनाथ—अरे तो क्या आज तुम मुझसे लड़ने की ठान बैठे हो ?

राजनाथ—यही समझ लीजिये।

शिवनाथ—पर मै तुमसे नहीं लड़ना चाहता।

राजनाथ—आप क्या मुँह लेकर लड़ेंगे मुझसे ?

[दिवाकरप्रसादजी का प्रवेश]

दिवाकर—क्या बात है बेटा ?

शिवनाथ—इसीसे पूछिये कि ऐसी कौन-सी बात कह दी मैंने, जो इतना उबल रहा है।

दिवाकर—अरे शान्त रहो बेटा।

शिवनाथ—मै तो शान्त हूँ ही।

राजनाथ—आप तो गिन कर रख लेते हैं महीने में, भला आप क्यों न शान्त होंगे ?

दिवाकर—[मस्तक पर हाथ पटककर] ओफ ! [शिवनाथ से] जाओ बेटा, तुम घर जाओ।

[शिवनाथ घर जाते हैं]

दिवाकर—यह सब क्या ?

राजनाथ—आये और झाड़ने लगे आर्डर मुझ पर, भैंस छाया में बाँध दो, गोबर-कूड़ा साफ कर दो। क्यों ? मैं कोई गुलाम हूँ इनका ?

दिवाकर—अरे !

राजनाथ—मैं भी नहीं उठा, तो ऐंठ गये। बोले, झाड़ू कहाँ है ? मैं कोई झाड़ू लगाने वाला हूँ, झाड़ू पूछे नौकर से।

दिवाकर—अरे बेटा, तुम्हारा बड़ा भाई है, इसमें बुरा ही क्या कह दिया उसने। तुम्हारे लिए क्या नहीं करता वह ?

राजनाथ—आप भी पिताजी मुझ पर लीपने लगे। अभी उस दिन आप ही न माने। भैंस ने मार ही दी पूँछ, कितना गन्दा हो गया था मेरा सूट।

दिवाकर—धुला भी तो दिया था तुम्हारे इसी भैया ने। तुरत दे दिया था पहनने को अपना, और स्वयं बस यों ही।

राजनाथ—तो कोई बात कहने के पहले टाइम और मूड भी तो देख लेना चाहिए।

दिवाकर—इसका क्या अर्थ ?

राजनाथ—अर्थ क्या, मेरे पास आया था मेरा एक क्लासफेलो—दिनेशचन्द्र, जिसका फादर डिप्टी कलेक्टर है। उन्हें आता देख पूछ बैठा, ये कौन ?

दिवाकर—अच्छा !

राजनाथ—ये आ रहे थे धोती-कुरते में थर्ड क्लास पोजीशन में,

तो मैंने इन्हें अपना बड़ा भाई बताने में इन्सल्ट समझी और इन्हें बता दिया अपना नौकर।

दिवाकर—ऐं!

राजनाथ—हाँ, पर ये आते ही बघारने लगे मुझ पर आर्डर, जिससे जितनी बचायी थी, उससे कहीं अधिक इन्सल्ट हो गयी मेरी।

दिवाकर—ओफ!

राजनाथ—जी! क्या समझेंगे कॉलेज के स्टूडेण्ट मुझे? निरा तुच्छ। इन्होंने मुझे मुँह दिखाने योग्य नहीं रखा। नानसेन्स!

दिवाकर—वह उस लड़के को नही जानते थे, इसीलिए भूल हो गयी।

राजनाथ—उसकी पर्सनाल्टी, उसकी पोजीशन बताती थी कि किसी हाई फेमिली का लड़का है।

दिवाकर—पर अच्छी तरह समझ लो, तुम्हारा भैया तुम्हें जी से चाहता है।

राजनाथ—चाहते हैं तो क्या, अहसान करते हैं मुझ पर?

दिवाकर—नौकरी में मिलता ही कितना है, वह तो कहो अच्छी खासी हो जाती है ऊपरी आमदनी, तो किसी तरह पूरा भी पड़ रहा है।

राजनाथ—घर में न जाने किसके भाग्य से यह आमदनी होती है। यह भी तो सोचना चाहिए।

दिवाकर—पर सोचो तो सही, उसके भी चार बच्चे हैं, उन्हें भी पढ़ाना-लिखाना है, कुछ खेती-मजूरी तो कराना नहीं है।

राजनाथ—तो?

दिवाकर—एक लड़की है, जो किसी बड़े घर की ही बहू बनेगी। कुछ चूल्हा-चक्की तो करेगी नहीं। वहाँ तो उसे भी

कुछ पढ़ा-लिखाकर ही तो भेजना है। विवाह में खर्च होगा सो अलग।

राजनाथ—तो मैं क्या करूँ इसके लिए, डाके डालूँ, चोरी करूँ ?

दिवाकर—अरे नहीं बेटा।

राजनाथ—तो क्या कल से हल-फावड़ा-कुदाल उठा लूँ या मजदूरी ही करने लगूँ, जिससे जी भर जाय आपका।

दिवाकर—अरे बेटा, इसलिए यह शरीर नहीं पाला है मैंने। भगवान् न करे, तुम्हें यह सब करना पड़े। तुम तो बैठे राज्य करो बेटा।

राजनाथ—इसी हाय-हाय में बैठे राज्य करूँगा ? सच बता रहा हूँ, दो दिन भी न जी सकूँगा।

दिवाकर—सुनो भी तो बेटा ! मैं कह रहा था कि तुम्हारे भैया को इन सबके लिए बचाने की चिन्ता ही नहीं, वह तो सब कुछ तुम्हारे लिए किये जा रहा है।

राजनाथ—तो रोक दीजिये उन्हें।

दिवाकर—ओफ !

राजनाथ—कॉलेज में डेली एक गधेभर का होम-वर्क और घर का एटमास्फियर यह ! कहीं चैन नहीं।

दिवाकर—अच्छा चलो अन्दर, भोजन करो चलकर।

राजनाथ—नहीं, अभी मैं यहीं··

दिवाकर—[हाथ पकड़कर] चलो भी तो, उठो।

[दोनों जाते हैं]

—पटाक्षेप—

चतुर्थ दृश्य

[आलोक कुछ साथियो समेत ग्राम-शाला मे चरखा कात रहे हैं। महात्माजी विराजमान हैं।]

आलोक—

गीत

चरखा चले हमारा !

चरखा चले हमारा प्यारा, चरखा चले हमारा—चरखा०—

आजादी के कठिन समय में जिसने जोश जगाया।
जिसने अपने तार-तार से नूतन बल उमगाया॥
राम बाण बन गया समर में, पर न किसी को मारा—चरखा०—

मिटी गुलामी मिटे गरीबी बेकारी मिट जाये।
चरखा चले कि अब न अविद्या धरती पर रह पाये॥
स्वतंत्रता रक्षा हित चरखा, चक्र सुदर्शन प्यारा—चरखा०—

महात्माजी—ठीक ही गाया है बेटा ! चरखा स्वतन्त्रता लाने के लिए जितना उपयोगी रहा, उसकी रक्षा के लिए भी उतना ही उपयोगी रहेगा।

आलोक—चरखे के प्रति मेरी यही आस्था है बाबा।

महात्माजी—चरखा बापू से मिली पैतृक सम्पत्ति है, जो सदा समर्थ रहेगा देश को सम्पन्न और समृद्ध बनाने के लिए।

आलोक—हमारा गाँव भी धीरे-धीरे पचा रहा है यह विचार।

महात्माजी—अच्छा !

आलोक—जी, अभी जितना सहयोग मिल सका है, उसके आधार पर गाँव में चल खड़ी हुई यह ग्रामशाला।

महात्माजी—वाह!

आलोक—कुछ चरखे और करघे भी कर लिये हैं। गाँव के बच्चे और युवक आते हैं, बड़े ही चाव से सब काम करते हैं यहाँ।

महात्माजी—अच्छा!

आलोक—जी, समय-समय पर गाँव के लोग इकट्ठे होते हैं, गाँव की भलाई की चर्चा करते हैं।

महात्माजी—अच्छा!

आलोक—शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, खेती-बारी आदि के सम्बन्ध में योजनाएँ बनती हैं।

महात्माजी—पूरी कर पाते हो उन्हें?

आलोक—रूढ़ियों के कारण बाधाएँ तो बहुत आती हैं, पर कुछ-न-कुछ तो होता ही है।

महात्माजी—हाँ, परिस्थिति तो बदल गयी, पर प्रकृति अभी नहीं बदली, बदलेगी।

आलोक—अवश्य बदलेगी। मेरा तो काम ही चल रहा है इसी विश्वास पर। जैसे-जैसे वातावरण अनुकूल बनेगा, सहयोग बढ़ेगा, हमारा काम भी···।

महात्माजी—अवश्य चमकेगा। ऐसा चमकेगा कि तुम्हारी ग्रामशाला बन जायगी विश्वविद्यालय, जिससे निकला हुआ स्नातक होगा योग्य नागरिक, पूरा मनुष्य।

आलोक—हमारे गाँव का बच्चा इन्सान बन जाय, बस इतनी ही तड़पन है मेरे दिल में।

महात्माजी—तुम्हारी तपस्या तुम्हारी यह तड़पन पूरी करेगी,

ईश्वर तुम्हारी मदद करेगा। अब चलूँगा, विलम्ब हो रहा है।

आलोक—कभी-कभी आ जाया कीजिये बाबा।

महात्माजी—तुम्हारा यह काम देश का काम है। अवश्य आया करूँगा बेटा इसे देखने।

[बाबा जाते हैं, सब उन्हें प्रणाम करते हैं।]

—पटाक्षेप—

पंचम दृश्य

[दिवाकरप्रसादजी का मकान । दिवाकरप्रसादजी बरामदे में लोटा, माला और आसनी लिये आते हैं । आसनी बिछाना चाहते हैं कि कोई छींक देता है ।]

दिवाकर—धत् तेरी नाक पर बम गिरे, पूजा के वक्त छींक, न जाने किस विपत्ति का सामना करना पड़े । शिव-शिव ! [आसनी बिछाते हैं कि स्वयं को छींक आ जाती है । नाक पर हाथ पटककर] ओफ ! अपनी ही दुश्मन हो गयी । [चुल्लू में जल लेकर मंत्र पढ़कर छिड़क देते हैं । मुँह, नाक, आँख, नाभि, हृदय, कण्ठ, सिर, बाहु और करतल का स्पर्श करते हैं । जल लेकर सिर, नेत्र, कण्ठ, हृदय, नाभि पर जल छिड़कते हैं, प्राणायाम चढ़ाते हैं । फिर माला जपने बैठ जाते हैं ।]

दिवाकर—[नेत्र बन्द किये माला जपते हुए] रमचन्ना !

रामचरण—[आकर] जी ।

दिवाकर—घर में ईंधन पहुँचा दे ।

[रामचरण जाता है]

दिवाकर—[पूर्ववत्] रमचन्ना !

रामचरण—[आकर] जी ।

दिवाकर—आज एकादशी है, मैं उपवास करूँगा । घर में कह दे, खाने को बना दे ।

रामचरण—बन रहा है ।

दिवाकर—क्या बन रहा है ?

रामचरण—साबूदाना, हलवा, रबड़ी ।

दिवाकर—अच्छा, मखाने की खीर और बनवा दे ।

[रामचरण जाता है । प्रमोद आकर खड़ा हो जाता है । दिवाकरजी ऊँघ जाते है, माला छूटकर भूमि पर गिर जाती है। प्रमोद माला उठाने को लपकता है, तब तक दिवाकरप्रसाद माला उठाकर फिर जपने लगते है । थोड़ी ही देर में फिर ऊँघ जाते हैं, माला गिर.जाती है । अबकी बार प्रमोद माला उठाकर घर भाग जाता है । दिवाकरप्रसादजी माला टटोलते है, पर मिलती नहीं ।]

दिवाकर—रमचन्ना ! रमचन्ना !! अरे रमचन्ना !!! क्या मर गया रे ।

रामचरण—[आकर] जी ।

दिवाकर—देख तो मेरी माला किधर है ?

रामचरण—वह तो प्रमोद बाबू घर उठा ले गये ।

दिवाकर—क्यों ?

रामचरण—आप पूजा करते समय नित्य ही सो जाते हैं, तो माता जी ने आज प्रमोद बाबू को भेजा कि जब माला गिर जाय तो उठा लाना ।

दिवाकर—अच्छा !

रामचरण—[माला देते हुए] जी, यह लीजिये ।

दिवाकर—[माला लेकर जपते हुए] नहाया है तूने आज ?

रामचरण—जा रहा हूँ नहाने ।

दिवाकर—धत् तेरे की, भ्रष्ट कर दी मेरी पूजा । समझ गया, इसीलिए छींक हुई थी ।

[रामचरण जाता है । दिवाकरप्रसाद माला मस्तक में लगाकर आँखे खोल देते है और आचमन करते हैं । रामचरण साबूदाना, हलवा और रबड़ी लाकर सम्मुख रख देता है ।]

दिवाकर—[सब कुछ देखकर] और मसाने की खीर ?

रामचरण—बन रही है।

[दिवाकरप्रसाद साबूदाना खाने के पश्चात् हलवा का एक ग्रास मुख में रखते हैं और तुरत थूक देते हैं।]

दिवाकर—क्या डाला गया है हलवा में ?

रामचरण—घी और शकर।

दिवाकर—शकर या संखिया ? [हलवा की तश्तरी सरकाकर] ले, तू ही खाकर बता, किस चीज का बना है हलवा ?

रामचरण—लौकी का।

दिवाकर—कहाँ से लाया था लौकी ? पूरी जहर।

रामचरण—आज तो अपने ही हाते से मँगायी माँजी ने।

दिवाकर—शिव-शिव ! सारी लौकियाँ कड़वी ही होंगी। सब तोड़ ले, आज बाजार भी है। सब बेच दी जायँगी। [खड़ी खाकर पानी पीते हैं।]

[दिनेशचन्द्र आता है]

दिनेशचन्द्र—[हाथ जोड़कर] प्रणाम दादा।

दिवाकर—प्रसन्न रहो बेटा, मैंने पहचाना नहीं।

दिनेशचन्द्र—जी, मैं आपके राजनाथजी का सहपाठी हूँ, मेरा नाम है दिनेशचन्द्र।

दिवाकर—अच्छा, तुम्हारे ही पिताजी ?

दिनेशचन्द्र—जी हाँ, डिप्टी कलेक्टर थे।

दिवाकर—थे !

दिनेशचन्द्र—जी, अब रिटायर हो चुके हैं।

दिवाकर—अच्छा, और सब ठीक ?

दिनेशचन्द्र—जी, सब कृपा है आपकी।

दिवाकर—रञ्जन मिला ?

दिनेशचन्द्—अभी नहीं, पर मिल ही जायँगे।

[शिवनाथ का प्रवेश]

शिवनाथ—[नोटों का बण्डल दिवाकरप्रसाद को देते हुए] लीजिये, इन्हें सँभालिये।

दिवाकर—[बण्डल लेकर] कितने हैं ?

शिवनाथ—पाँच सौ पचपन। मैं अभी शहर जा रहा हूँ।

दिवाकर—अरे, आओगे कब ?

शिवनाथ—परसों। [जाते हैं]

दिवाकर—क्या करते हो बेटा ?

दिनेशचन्द्—जो राजनाथ करते हैं।

दिवाकर—वह तो बेकार है।

दिनेशचन्द्—मैं भी बेकार हूँ।

दिवाकर—अरे बेटा, बाप रहा डिप्टी कलेक्टर, तुम्हें क्या, चाहे जब हो जाओ थानेदार और सोने की दीवालें खड़ी कर लो।

दिनेशचन्द्—पर इन सोने की दीवालों के लिए न जाने कितनी मिट्टी की दीवालें रोयेंगी। अपने आँसुओं में ही ढह जायँगी। मैं तो यह सब सोचकर ही···

दिवाकर—लड़के हो अभी। अभी आया था मेरा बड़ा लड़का शिवनाथ, कानूनगो है, दे गया पूरे पाँच सौ पचपन। इसी सप्ताह की ऊपरी आमदनी है यह।

दिनेशचन्द्—होगी, पर मैं···

दिवाकर—क्या करोगे तुम ?

दिनेशचन्द्—अभी तक तो कुछ निश्चित नहीं, पर इतना निश्चित है कि पैसे के लिए यों लोगों के शाप न ले सकूँगा। पाप न कमा सकूँगा।

दिवाकर—अरे बेटा, पैसे को परमात्मा समझो। पैसा कमाने के

लिए शापों को न डरो, पापों को न डरो। कमाते जाओ, आँख मूँदकर कमाते जाओ।

दिनेशचन्द—जी !

दिवाकर—हाँ, जब घर में कुछ इकट्ठा हो जाय, तो उसमें से कुछ दान कर दो। कुछ दिन गंगाजी पर कछुओं को लाई खिला दो। मार्ग में चींटियों को शकर चुना दो। कभी-कभी कुछ ब्राह्मण, साधु, महात्माओं को भोजन करा दो। बस, कट जायँगे सारे पाप ! मिल जायगा स्वर्ग का अधिकार !

दिनेशचन्द—ऍं !

दिवाकर—यदि बहुत इकट्ठा हो जाय, तो एकआध मन्दिर बनवा दो, घाट बनवा दो, तीर्थ कर आओ, यज्ञ करा दो। बस, फिर क्या, दुनिया तुम्हे दानी कहेगी, धर्मात्मा कहेगी, तुम्हें पापी कहनेवाले का मुँह कुचल देगी। यह दम है पैसे में।

दिनेशचन्द—ओफ !

दिवाकर—और फिर बैठ जाओ मेरी तरह माला लेकर। दुनिया तुम्हें पुजारी कहेगी, पुण्यात्मा कहेगी, तुम्हारा यश गायेगी।

दिनेशचन्द—यों कितना इकट्ठा कर लिया है आपने ?

दिवाकर—भगवान् बड़े बोल न बुलवाये, पचास हज़ार से ऊपर तो मेरी ही कमाई है।

[दिनेशचन्द सीटी बजाता है]

दिवाकर—यह क्या बेटा ?

दिनेशचन्द—साथियों को सावधान कर रहा हूँ।

दिवाकर—साथियों को सावधान ?

दिनेशचन्द—जी हाँ, जो आपके घर के आसपास लगे हैं।

मजाल नही किसीकी, जो उनकी बन्दूकों का घेरा तोड़कर आपके पास तक आ सके।

दिवाकर—ऐं!

दिनेशचन्द—[रिवाल्वर तानकर] हाँ, बस मँगा दीजिये तुरत, पूरे पचास हजार।

[दिवाकरप्रसाद मुँह फैलाकर रह जाते हैं]

दिनेशचन्द—देर न कीजिये। तुरत मँगाइये, नहीं तो अभी मिलता है आपको स्वर्ग का टिकट।

[रिवाल्वर दिवाकरप्रसाद के सीने पर लगा देते हैं]

दिवाकर—रुको बेटा, रमचन्ना!

[रामचरण आता है, दृश्य देखकर स्तब्ध रह जाता है। दिनेशचन्द इतने सतर्क खड़े हो जाते हैं कि किसी ओर से धोखा न हो सके।]

दिवाकर—ले आ भैया घर से दस हजार।

दिनेशचन्द—[डाँटकर] ऐं! दस हजार, क्या मरना ही चाहते हैं आप?

[रिवाल्वर तानते है].

दिवाकर—[आह भरकर] ले आ भैया, पूरे पचास हजार ले आ।

[रामचरण अन्दर जाता है]

दिनेशचन्द— [रिवाल्वर सीने पर तानकर] जल्दी मँगाइये।

दिवाकर—अबे, जल्दी ला।

[थोडी देर मे रामचरण एक गट्ठर लाता है]

दिनेशचन्द—[सतर्क खड़े होकर] खोल।

[रामचरण खोलता है].

दिनेशचन्द—ठीक। [दिवाकरप्रसाद से] वे पाँच सौ पचपन भी इसीमे डाल दीजिये।

[दिवाकरप्रसादजी पाँच सौ पचपन के नोटों का बण्डल गट्ठर में डाल देते है]

दिनेशचन्द्—[रामचरण से] गट्ठर बाँध दे।

[रामचरण गट्ठर बाँधता है]

दिनेशचन्द्—[गट्ठर उठाकर] बस खबरदार, यदि मुँह से आवाज निकली, तो फिर''हाँ, मैं इसमें से कुछ दान-पुण्य कर दूँगा और फिर बैठ जाऊँगा आपकी तरह माला लेकर। दुनिया मुझे पुजारी कहेगी, पुण्यात्मा कहेगी, मेरा यश गायेगी, समझे?

[दिनेशचन्द जाता है, दिवाकरप्रसाद सिर पटक देते हैं।]

दिवाकर—[सिर उठाकर आह भरते हुए दबी जबान से] हाय राम, [थोड़ी देर में दिनेशचन्द से विश्वासपूर्वक निर्भय होकर जोर से] दौड़ो भैया दौड़ो, मैं लुट गया। हे भगवन्! [भूमि पर सिर पटककर धाड़ मारकर रोने लगते हैं।]

[राजनाथ आता है]

राजनाथ—[सँभालते हुए] क्या है पिताजी?

दिवाकर—हाय, मैं तो लुट गया बेटा, बुरी तरह लुट गया।

[राजनाथ से लिपट जाते हैं]

राजनाथ—क्या हुआ क्या?

दिवाकर—कुछ नहीं रहा घर में बेटा, हाय राम! [रोते-चिल्लाते हुए] हाय पैसा!

राजनाथ—बताइये भी तो कुछ।

दिवाकर—[राजनाथ को छोड़कर कुछ सावधान होकर] कहाँ थे तुम?

राजनाथ—यहीं गाँव में ही था।

दिवाकर—आह बेटा, एक लड़का आया तुम्हीं सरीखा, नाम बताया दिनेशचन्द्र। रिवाल्वर छाती पर तानकर पूरे पचास हजार पाँच सौ पचपन ले गया।

[हाय पैसा! छाती पीटते हैं]

राजनाथ—पिताजी, आप भी व्यर्थ की चिन्ता में इतने दुःखी हो गये। दिनेशचन्द्रजी !

दिनेशचन्द्र—[बाहर से] जी।

राजनाथ—ले आइये वह गट्ठर।

[दिनेशचन्द्र गट्ठर लाता है]

राजनाथ—[गट्ठर खोलकर] लीजिये, गिन लीजिये एक-एक।

दिवाकर—बेटा, मैं यह सब स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ।

राजनाथ—जी नहीं।

दिवाकर—फिर क्या ?

राजनाथ—यह सब मेरे द्वारा रचित एक नाटक था।

दिवाकर—ऐं ! नाटक !

राजनाथ—जी हाँ।

दिवाकर—अरे बेटा, ऐसा प्राणलेवा नाटक ! मेरा तो हार्ट फेल हो गया होता। आखिर यह सब किया क्यों तुमने ?

राजनाथ—भैया-भाभी को दिखाने के लिए कि हम बेकार नहीं हैं, निरे निकम्मे नहीं हैं। हम भी पैसा कमा सकते हैं, खूब कमा सकते हैं।

दिवाकर—तो यों कमाओगे ?

राजनाथ—अवश्य। मैं पढ़ा-लिखा खेती-मजदूरी तो कर नहीं सकता, कोई उद्योग-धन्धा जानता नहीं, नौकरी मिलती नहीं, तो सिवाय इसके और करूँगा ही क्या ?

दिवाकर—और दिनेशचन्द्र ?

राजनाथ—यह भी।

दिवाकर—यह तो एक बड़े आदमी का बेटा है।

राजनाथ—बड़े आदमी का बेटा है, तो बड़े काम भी करेगा। हम लोग भैया की भाँति नित्य ही छिटपुट हमले नहीं

करेंगे। हम तो कभी-कभी, अचानक अचूक हमला कर लिया करेंगे।

दिवाकर—एँ!

राजनाथ—इतनी चतुरता और सतर्कता से कि समाज में प्रतिष्ठा और प्रभाव बढ़ता रहे, आतंक बढ़ता रहे। मूर्ख दस्युओं की भाँति छिपते न फिरना पड़े।

दिवाकर—पर बेटा, फिर भी पकड़े जा सकते हो, जेल जा सकते हो, फाँसी तक पा सकते हो।

राजनाथ—भैया भी तो घूस में पकड़े जा सकते हैं, नौकरी से हटाये जा सकते हैं, जेल भी जा सकते हैं।

दिवाकर—तुम तो विद्यार्थी हो, विद्यार्थी को विद्यार्थी से तो प्रेम रखना ही चाहिए।

राजनाथ—मुझ सरीखे विद्यार्थी का अर्थ है विद्या की अर्थी, जिस पर विद्या की लाश ढोयी जा रही है।

दिवाकर—एं! तो क्या विद्या मर चुकी?

राजनाथ—अवश्य। जगह-जगह तो उसकी लाश के टुकड़े पड़े हैं, फिर भी मैं आपके समाधान के लिए कह दूँ कि हम विद्यार्थी आपस में प्रेम करते हैं।

दिवाकर—पर इस प्रकार तो तुम किसी विद्यार्थी के ही बाप को सताओगे, लूटोगे, ठगोगे?

राजनाथ—भैया भी तो विद्यार्थी रहे हैं। वे तो विद्यार्थी के गरीब से गरीब बाप से घूस ले लेते हैं, उसकी आहें डकार जाते हैं।

दिवाकर—ओफ!

राजनाथ—विश्वास रखिये पिताजी, हम किसी गरीब, लाचार को नहीं सतायेंगे।

दिवाकर—पर आदमी को तो सताओगे?

राजनाथ—आदमी रह कहाँ गया दुनिया में ! आदमी रहा होता, तो हमें ऐसे कामों के लिए मजबूर न होना पड़ता ।

दिवाकर—कुछ भगवान् को भी डरो बेटा, कुछ पापों को भी डरो ।

राजनाथ—पैसा कमाने के लिए पापों से नितान्त निर्भय कर दिया है आपने, भैया को भी, हमें भी ।

दिवाकर—[आह भरकर] ओफ !

राजनाथ—आप यह पैसा सँभालिये, हम लोग जा रहे हैं ।

दिवाकर—कहाँ ?

राजनाथ—पैसा कमाने ।

[दोनो चल देते है]

दिवाकर—अरे सुनो भी तो बेटा !

[दोनों चले जाते हैं, दिवाकरप्रसाद देखते ही रह जाते हैं ।]

—पटाक्षेप—

षष्ठ दृश्य

[एक गाँव। आलोक और श्याम झाड़ू, प्रकाश पल्ला और प्रभास फावड़ा लिये निकलते हैं। सब नारे लगाते हैं।]

आलोक—गाँव हमारा—

सब—साफ रहेगा।

आलोक—रोग-दोष से—

सब—मुक्त रहेगा।

आलोक—गोबर-कूड़ा—

सब—खाद बनेगा।

आलोक—धरती से—

सब—सोना उपजेगा।

आलोक—सारा गाँव—

सब—कुटुम्ब बनेगा।

आलोक—सत्य-प्रेम का—

सब—राज्य चलेगा।

[नारों की आवाज सुनकर कई बच्चे आ जाते हैं। आलोक और श्याम बुहारने लगते हैं, प्रकाश कूड़ा उठाने लगते हैं और प्रभास खोखा के लिए गड्ढा खोदने लगते हैं। शिवदीन आता है।]

शिवदीन—[हाथ जोड़कर] अरे बाबू आप, आप रहने दें बाबू, हम सब…अरे देवीदीन!

[सबके पास जा-जाकर ऐसा न करने के लिए गिड़गिड़ाता है, पर कोई नहीं मानता।]

शिवदीन—मान जायँ बाबू, अरे देवीदीन ! क्या बहरा हो गया या मर गया, जो··· ।

देवीदीन—[दौड़ते हुए आकर] क्या है काका ?

शिवदीन—है क्या, देख नहीं रहा है ?

[देवीदीन सबके पास जा-जाकर झाड़ू, पलवा और फावड़ा ले लेने का असफल प्रयास करता है ।]

शिवदीन—तो ले आ, अपने घर से दो झाड़ू ही ले आ ।

[देवीदीन घर से दो झाड़ू लाता है । एक से शिवदीन, एक से स्वयं बुहारने लगता है । एक बच्चा भी अपने घर से झाड़ू लाकर बुहारने लगता है । सहसा अत्यन्त क्रुद्ध रामदत्तजी आते हैं ।]

रामदत्त—[बच्चे के गाल पर एक चाँटा मारकर और झाड़ू छीनकर] घर चल, देख तुझे कैसा ठीक करता हूँ ।

[सब लोग काम बन्द कर देखने लगते है । बच्चा रोता-सा घर चला जाता है । रामदत्त भी चल देते हैं ।]

आलोक—सुनिये काका ।

रामदत्त—कुएँ में गया काका और तुम्हें क्या कहूँ ।

आलोक—ऐसी क्या बात हो गयी ?

रामदत्त—[सरोष] बात हो गयी, कुछ कोरी-चमार का लड़का समझ रखा है तुमने, जो·····

आलोक—नहीं, मैंने आदमी का लड़का समझा है ।

रामदत्त—तो मैं वह आदमी नहीं, जो जीते-जी अपने लड़के को झाड़ू लगाते देख सकूँ ।

आलोक—जी !

रामदत्त—हाँ, यह भी कोई भलमनसाहत है ? क्या इसीलिए पाला-पोसा है मैंने ?

आलोक—उहूँ।

रामदत्त—उहूँ क्या, घर में मैंने कभी लोटाभर पानी नहीं माँगा इससे, कभी इधर का तिनका उधर रखने को नहीं कहा, और तुमने आकर झाड़ू लगाने के लिए उत्साहित कर दिया। देखकर खून उतर आया मेरे।

आलोक—काका, आप तो ··

रामदत्त—आप तो के धोखे में मत रहना। एक बार मास्टर ने स्कूल में लिपवाया था मेरे लड़के से। मुझे पता चला, तो मैं पहुँचा लट्ठ लेकर, मारते-मारते ही छोड़ा था मास्टर को।

आलोक—एँ!

रामदत्त—देखो, बड़ा अनर्थ हो जायगा आलोक बाबू। इसलिए अब मेरे मुँह न लगो, बस।

आलोक—कुछ मेरी भी तो सुनिये।

रामदत्त—क्या सुनूँ, तुम अपने घर के राजा, मैं अपने घर का। जब परता माँगने आऊँ, न देना।

आलोक—बड़ा कठिन है काका।

रामदत्त—कठिन-चठिन कुछ नहीं। तुम अपने पूर्वजों को तारो, अपने कुल का नाम उजागर करो, मुझे यों ही रहने दो।

[चले जाते हैं]

आलोक—यह दशा है हमारे समाज की। अभी लड़कों को लाड़-प्यार में बिगाड़ेंगे, निकम्मा बनायेंगे। बाद में इन्हीं की करतूतों पर फूट-फूटकर रोयेंगे।

शिवदीन—सही कह रहे हो बाबू, अब हम दोनों यहाँ साफ कर लेंगे, गड्ढा भी खोद लेंगे। अब आप जायँ बाबू।

आलोक—गड्ढा एक गज लम्बा, एक गज चौड़ा और एक ही

गज गहरा खोदना। फिर उसमें ऊपर तक कंकड़ भर देना, यों सोख्ता बन जायगा।

शिवदीन—अच्छी बात बाबू। [सबको जाते देखकर] अरे देवीदीन, सारा सामान ले ले और पहुँचा आ बाबू लोगों को घर तक।

आलोक—नहीं, हम लोग सब लिये जायँगे।

[आलोक साथियो समेत जाते हैं, शिवदीन और देवीदीन उनको हाथ जोड़ते हैं। उत्तर मे वे सब भी हाथ जोड़ लेते है।]

—पटाक्षेप—

सप्तम दृश्य

[राजनाथ का मकान। राजनाथ आता है। वह सिर पर गमछा लपेटे है, इस प्रकार कि केवल कुछ मस्तक, आँख, नाक और मुँह ही दिखाई देता है। वह कुछ दुःखी-सा बैठ जाता है। इसी समय दिनेशचन्द्र आता है।]

दिनेशचन्द्र—गुडनाइट मिस्टर आर० एन०। [हाथ बढ़ाता है]

राजनाथ—[उठकर हाथ मिलाते हुए] गुडनाइट मिस्टर ! गुड-नाइट।

दिनेशचन्द्र—[राजनाथ के सिर का गमछा हटाने का प्रयत्न करते हुए] यह क्या तमाशा बना रखा है ?

राजनाथ—[गमछा पकड़कर] रहने दो भाई।

दिनेशचन्द्र—क्यों, क्या सिर दर्द कर रहा है ?

राजनाथ—नहीं।

दिनेशचन्द्र—जाड़ा लग रहा है ?

राजनाथ—जी नहीं।

दिनेशचन्द्र—चोट लग गयी है ?

राजनाथ—नहीं भाई।

दिनेशचन्द्र—तब क्या बात है, मैं भी तो जानूं ?

राजनाथ—यह सब कुछ मत पूछो मित्र।

दिनेशचन्द्र—मुझे भी न बताओगे ?

राजनाथ—आपसे भला क्या छिपाव।

दिनेशचन्द्र—तो बताइये न।

राजनाथ—[सँभलकर बैठते हुए] तो सुनिये।

दिनेशचन्द्—कहिये।

राजनाथ—अभी था विठूर का मेला।

दिनेशचन्द्—विठूर कहाँ ?

राजनाथ—विठूर नहीं जानते ? भाई, कानपुर के निकट गंगा के किनारे एक तीर्थ ब्रह्मावर्त।

दिनेशचन्द्—अच्छा।

राजनाथ—हम लोग लगभग पचीस-तीस मेला देखने को तैयार हुए।

दिनेशचन्द—अच्छा।

राजनाथ—आये स्टेशन, स्पेशल ट्रेन तैयार थी। सब तो बैठ गये, मैं खड़ा हो गया जंजीर के पास।

दिनेशचन्द—क्यो ?

राजनाथ—मैंने हर दस मिनट पर जंजीर खींचने का संकल्प किया था।

दिनेशचन्द—अच्छा !

राजनाथ—हाँ, गाड़ी चल दी कि मामा आ गये।

दिनेशचन्द—कौन मामा ?

राजनाथ—पूरे बुद्धू हो यार, मामा को भी नहीं जानते। हम सब टिकट चेकर को 'मामा' ही तो कहते हैं।

दिनेशचन्द—अच्छा।

राजनाथ—बोले, टिकट ?

दिनेशचन्द्—हाँ।

राजनाथ—मैं लीडर बना। कह दिया—वी आर स्टूडेण्ट्स।

दिनेशचन्द्—ठीक।

राजनाथ—पर वह न माना।

दिनेशचन्द्—माने क्यों, उसकी ड्यूटी थी।

राजनाथ—फिर मान गये बेटा, वही पाकर, जिसके पात्र थे।

दिनेशचन्द्र—क्या पाकर ?

राजनाथ—यही, दो-चार तमाचे ।

दिनेशचन्द्र—वाह !

राजनाथ—फिर क्या ? रुआब जम गया मेरा कम्पार्टमेण्ट में ।

दिनेशचन्द्र—ज़रूर जम गया होगा ।

राजनाथ—अब मैं जुट गया अपना संकल्प पूरा करने में ।

दिनेशचन्द्र—अच्छा, आप ही दस मिनट पर जंजीर खींचने लगे ?

राजनाथ—ज़रूर ।

दिनेशचन्द्र—लोगों को तो गंगा नहाने की जल्दी पड़ी होगी । रोका नहीं आपको ?

राजनाथ—मन ही मन खीझ तो सभी रहे थे, पर रोकने की दम किसीमें न थी, न बताने की ही ।

दिनेशचन्द्र—रुआब जो जम गया था, फिर बताकर करते भी क्या ? गार्ड की भी वही गति होती, जो टिकट चेकर महोदय की हुई ।

राजनाथ—हाँ, इसमें क्या शक । यों गाड़ी अनवरगंज से मन्धना दस मील ठीक ढाई घण्टे में आयी ।

दिनेशचन्द्र—वाह, भैंसे की चाल !

राजनाथ—यहाँ होता था क्रास, तो गाड़ी को काफी रुकना था, इसलिए हम सब उतर पड़े ।

दिनेशचन्द्र—अच्छा ।

राजनाथ—सड़क पर थीं दूकानें, तो फल, मिठाई, चाय, पकौड़ी, चाट आदि जिसे जो भाया, नाश्ता करने लगे और वहीं दूकानों पर बैठकर गप्प हाँकने लगे ।

दिनेशचन्द्र— हाँ !

राजनाथ—गाड़ी ने चलने की सीटी दी, तो सब दौड़ पड़े। दूकानदार भी दौड़ पड़े पैसों के लिए।

दिनेशचन्द—तो क्या पहले नहीं दिये थे पैसे ?

राजनाथ—यहाँ तो सभी कुछ बिना टिकट होना था न।

दिनेशचन्द—भई वाह !

राजनाथ—मैं फिर लीडर बना। बोला—गाड़ी में तो बैठ जाने दो।

दिनेशचन्द—हाँ।

राजनाथ—हम लोग बैठ गये, गाड़ी सरकने लगी, दूकानदार हाथ पसारे दौड़ने लगे।

दिनेशचन्द—हाँ।

राजनाथ—मैंने कहा, सब लोग मिलकर हिसाब जोड़ लो। जितना हो, उतना काटकर पैसा ले आओ। मेरे पास सौ का नोट है।

दिनेशचन्द—वाह !

राजनाथ—गाड़ी की रफ्तार तेज हुई, दूकानदार निराश हो गये। एक मटरवाला एक हाथ पर थाल लिये, एक हाथ बढ़ाये दौड़ता ही रहा।

दिनेशचन्द—बड़ा हिम्मती था वह।

राजनाथ—मुझे भी आ गया ताव, मैंने मार ही तो दिया थाल पर हाथ।

दिनेशचन्द—अरे राम-राम ! गिर गया होगा बेचारे गरीब का सारा सामान !

राजनाथ—वह तो गिर ही गया। बोला था—मर गया बाबू।

दिनेशचन्द—इतना तो नहीं करना चाहिए था।

राजनाथ—करना तो कुछ भी नहीं चाहिए था, पर करने जो यही निकले थे।

दिनेशचन्द्—ओफ !

राजनाथ—इसके बाद फिर अपने संकल्प में जुटने की सूझी।

दिनेशचन्द्— अच्छा।

राजनाथ—और सही मानें आप, सन्धना से बिठूर केवल छह मील है, पर पहुँचे ठीक दो घण्टे में।

दिनेशचन्द्—वाह, अबकी बार तो आपने भैंसे को भी मात कर दिया।

राजनाथ—उतरकर मेले में गये। इसी ट्रेन से रिटर्न होना था. तो थोड़ी देर मौज लेकर चले आये।

दिनेशचन्द्—अच्छा।

राजनाथ—सब यथास्थान बैठ गये, ट्रेन ने सीटी दी और चल दी।

दिनेशचन्द्—हाँ।

राजनाथ—मैं सीट पर न बैठकर दरवाजे से खड़ा था, बाहर की ओर मुँह किये।

दिनेशचन्द्—क्यों ?

राजनाथ—वापसी के लिए दूसरी ही स्कीम थी।

दिनेशचन्द्—क्या ?

राजनाथ—रेलवे लाइन के साथ-साथ पैदल मार्ग भी है।

दिनेशचन्द्—अच्छा।

राजनाथ—खूब चलता है मेला इससे। बहू-बेटी, माँ-बहनें सभी रंग-बिरंगी फुदकती फुलवारी-सी।

दिनेशचन्द्—अच्छा।

राजनाथ—बस, आगे समझ जाइये।

दिनेशचन्द्—क्या समझ जाऊँ ?

राजनाथ—यही कि मैंने रख लिये थे अपने पास थोड़े-से फूल।

दिनेशचन्द्—क्यों ?

राजनाथ—लुभावनी कलियाँ देखकर उन पर बरसा देता था ये फूल।

दिनेशचन्द्—अच्छा, और लोग चुप थे ?

राजनाथ—नहीं, मैं बरसाता था फूल, वे बरसा रहे थे ईंट-पत्थर।

दिनेशचन्द्—अच्छा, तो कोई पत्थर ही लग गया सिर में ?

राजनाथ—सुनिये भी तो, ईंट-पत्थर हममें से किसीके नहीं लगे, वे तो औरों के ही लगते रहे।

दिनेशचन्द्—अच्छा।

राजनाथ—यों गाड़ी मन्धना आ गयी। रुकी ही थी कि एक नवयुवक आया मेरे सामने, बोला—इधर आइये मिस्टर।

दिनेशचन्द्—ऐं !

राजनाथ—हाँ, मैं ताड़ गया कि कुछ दाल में काला है अवश्य ! तो पीछे सरकने लगा।

दिनेशचन्द्—ठीक किया।

राजनाथ—पर देखते-देखते बहुत आ गये, मुझे खींच लिया नीचे। अधिकांश विद्यार्थी ही जान पड़ते थे उनमें।

दिनेशचन्द्—और साथियों ने कोई ऐक्शन नहीं लिया ?

राजनाथ—कुछ न पूछो मित्र, सबकी हवा-सी खिसक गयी। यों देखने लगे जैसे मुझे पहचानते ही न हों।

दिनेशचन्द्—ओफ, बड़े विश्वासघाती निकले सब।

राजनाथ—अरे नहीं भैया, गाड़ी चली जाती, तो कचूमर न निकाल दिया जाता सभी का।

दिनेशचन्द्—[लम्बी साँस खींचकर] खैर, फिर ?

राजनाथ—फिर मुझसे पूछा गया, तुम कौन हो ? मैंने तनकर उत्तर दिया, मैं हूँ स्टूडेण्ट। तो सब नीचे से ऊपर तक देखने लगे।

दिनेशचन्द्—एज देखकर डाउट हो रहा होगा उन्हें। आप

बी० ए० के लिए अपना फाइनल इयर प्लान बता देंने, कह देते, थ्री इयर्स प्रीवियस में लगे, सेकण्ड इयर चल रहा है फाइनल के लिए।

राजनाथ—आपको तो आ रहा है मजा, और यहाँ वह सारा सीन याद कर हुलिया टाइट होने लगती है।

दिनेशचन्द्र—तो कुछ और भी हुआ क्या ?

राजनाथ—अभी तक हुआ ही क्या।

दिनेशचन्द्र—तो बताइये न ?

राजनाथ—सुनो, वह नवयुवक बोला—यह है विद्यार्थी, अपनी माँ का सपूत, भारत माँ का सपूत, जो राह चलती माँ-बहनों की प्रतिष्ठा के साथ खुलकर खिलवाड़ कर सकता है।

दिनेशचन्द्र—ऐं !

राजनाथ—हाँ, वह कहता गया. इसके माँ-बहनें न होंगी, यह बिना माँ के ही जनमा होगा।

दिनेशचन्द्र—ओफ !

राजनाथ—न जाने कितने हाथ पड़ जाते मुझ पर, पर उसने सबको रोक दिया।

दिनेशचन्द्र—अच्छा ! और लोग मान भी गये ?

राजनाथ—मो-बड़ा रंग है उसका वहाँ, मजाल थी किसीकी, जो…।

दिनेशचन्द्र—अच्छा।

राजनाथ—फिर बुलाया उसने एक नाई।

दिनेशचन्द्र—ऐं !

राजनाथ—हाँ, बस अब कुछ न पूछो मित्र।

दिनेशचन्द्र—अच्छा, क्या हुआ ?

राजनाथ—फिर मेरे सिर की ओर इशारा कर कहा गया, बनाओ इस पर एक अच्छा-सा चौराहा।

दिनेशचन्द्—ऐं!

राजनाथ—बस, नाई ने एक रास्ता [हाथ से इंगित कर] इस कान से चोटी होकर इस कान तक, और दूसरा रास्ता मत्थे से चोटी होकर पीछे गरदन तक बना दिया।

दिनेशचन्द्—यों बन गया चौराहा?

राजनाथ—हाँ, वह तो बन ही गया।

दिनेशचन्द्—और आप बैठे-बैठे मजे में बनवाते भी रहे?!

राजनाथ—करता ही क्या वहाँ।

दिनेशचन्द्—अच्छा, फिर?

राजनाथ—फिर बोले, गये काशन।

दिनेशचन्द्—काशन, कैसे काशन?

राजनाथ—काशन : हाथ ऊपर, हाथ नीचे, ठुड्ढी ऊपर, ठुड्ढी नीचे, आँख खोल, आँख बन्द, जोर से हँस, जोर से रो आदि।

दिनेशचन्द्—ऐसा ही करना भी पड़ा होगा आपको?

राजनाथ—अब कुछ न पूछो मित्र, जरा-सा चूका कि चपत।

दिनेशचन्द्—एं, तो मार भी पड़ी?

राजनाथ—सो तो चपत क्या, जूते तक पड़े। पर केवल लज्जित करने के लिए इतने धीरे, जिससे चोट न लगे।

दिनेशचन्द्—फिर?

राजनाथ—फिर थोड़ी देर में आ गयी बस, मुझे उसी पर बिठा दिया गया, अपर क्लास में।

दिनेशचन्द्—और आप उपकृत होकर चल दिये।

राजनाथ—अरे भैया, जान बची लाखों पाये।

[अकस्मात् अखबारवाले की आवाज सुनायी पड़ती है]

अखबारवाला—ताजे समाचार एक आने में, एक आने में ताजे समाचार। चित्रकूट मेले मे एक नवयुवक की गुण्डा-गिरी, जनता ने खूब मरम्मत की, चौराहा बना दिया चाँद पर, हजरत का फोटो भी देखिये। एक आने में ताजे समाचार, एक आने मे। [ऐसी ही रट लगाये है]

राजनाथ—[घबराकर] यह क्या गजब सुन रहा हूँ दिनेश भैया, मुझे बचाओ, बुलाओ अखबारवाले को। कुछ पैसा है आपके पास? सारे अखबार ले लो।

दिनेशचन्द्—अच्छी बात। अखबारवाले!

अखबारवाला—[आकर] हाँ बाबू।

दिनेशचन्द्—किस अखबार में निकली है यह खबर?

[अखबारवाला वह अखबार दिखाता है]

दिनेशचन्द्—ये सारे अखबार मुझे दे दो।

[अखबारवाला सारे अखबार गिनकर देता है]

अखबारवाला—क्या करेंगे बाबू इन सबका?

दिनेशचन्द्—इन सबका मै फ्री डिस्ट्रीब्यूशन करूँगा। [पैसे दे देते हैं]

[अखबारवाला जाता है]

राजनाथ—इतना और करो भैया, सीधे प्रेस जाओ, सारी प्रतियाँ खरीद लो और कुछ ऐसी व्यवस्था करो, जिससे सवेरे के संस्करण मे न छपने पाये यह खबर। जाओ।

[दिनेशचन्द जाता है, राजनाथ सारे अखबारों को लपेट लेता है। शिवनाथ आते हैं।]

शिवनाथ—आज का अखबार है यह?

राजनाथ—जी नहीं।

शिवनाथ—देखूँ, पिछला ही सही।

[राजनाथ उठकर चल देता है। शिवनाथ एक अखबार उठाकर पढ़ते हैं, सन्न रह जाते हैं। इसी समय दिवाकरप्रसादजी आते हैं।]

दिवाकरप्रसाद—कोई नयी खबर ?

शिवनाथ—लीजिये, पढ़ लीजिये। [हाथ से इंगित कर] इसे अवश्य पढ़ लीजिये। [अन्दर जाते हैं]

दिवाकर—[पढ़कर] ओफ ! [आह भरते हैं। अखबार हाथ से गिर पड़ता है। स्वयं गिरते-गिरते बच जाते हैं।]

—पटाक्षेप—

द्वितीय अंक

रंगमंच

दृश्य	पात्र	सामग्री
प्रथम	आलोक, श्याम, महात्माजी, रामदत्त	दस ईंटें
द्वितीय	देवीदीन, पूती, रामचरण	एक पलवा, एक झाड़ू
तृतीय	राजनाथ, आलोक	एक पिस्तौल मय कारतूस
चतुर्थ	दिवाकरप्रसाद, राम-चरण, शिवनाथ, प्रमोद	लोटा, आसन, माला [जपनेवाली]
पंचम	मंगली, आलोक	कोढ़ी के लिए पट्टी, बन्धन या जो उपयुक्त समझा जाय
षष्ठ	रामदत्त, महात्माजी	×
सप्तम	राजनाथ, दिनेशचन्द, महात्माजी	एक कुदाल, एक फावड़ा

प्रथम दृश्य

[पाँच युवक ईंटें ढो रहे हैं। प्रत्येक बायीं ओर से ईंटें लेकर दाहिनी ओर के व्यक्ति को दे देता है, यही क्रम चल रहा है। श्याम बायीं ओर किनारे पर और आलोक मध्य में खड़े हैं। वे एक गीत गा रहे हैं। एक खादीधारी महात्मा एक ओर ओट में खड़े यह सब देख-सुन रहे हैं।]

आलोक—

गीत

आओ हाथ बँटाओ साथी।
हिल-मिल भार उठाओ साथी॥
सड़क बनी, पुल भी बन जावे, गाँव गाँव से यों मिल जावे।
नदी चढ़ी हो, बाढ़ बढ़ी हो, आये पथिक पार हो जावे॥
आओ सेतु बनाओ साथी—आओ—
इन हाथों में वह जादू है, पर्वत भी राई बन जावे।
इन हाथों में वह कमाल है, पत्थर पर भी कमल खिलाये॥
वह कमाल दिखलाओ साथी—आओ—
अपना हाथ, काम भी अपना, अपना गाँव, देश भी अपना।
हाथ बँटाना सीख लिया तो, रामराज्य की पूर्ण कल्पना॥
सो साकार बनाओ साथी—आओ—

आलोक—[मुस्कराकर] सुस्ती का काम नहीं, फुर्ती कीजिये।

[काम में तेजी आती है]

आलोक—और फुर्ती

[और तेजी आती है]

श्याम—[हाथ झाड़ते हुए] बस।

आलोक—अच्छा !

श्याम—जी ।

[महात्माजी सबके समक्ष प्रकट होते हैं]

महात्माजी—बलिहारी जाता हूँ बेटा, तुम्हारे इस ऊँचे विचार पर, जिसे तुम साकार करने में जुटे हो ।

[सब अवाक्, केवल हाथ जोड़ लेते है ।]

महात्माजी—तुम सबने सड़क बना ली, पुल भी बनाने में जुटे हो, कैसा आदर्श श्रमदान है यह ।

आलोक—पर बाबा···?

महात्माजी—हॉ-हाँ, कहो ।

आलोक—सड़क बन गयी, हम सभी को आराम हुआ, पुल बन जायगा, हम सभी सुख-सुविधा पायेंगे ।

महात्माजी—अवश्य ।

आलोक—अपने लिए आराम और सुख-सुविधा जुटाने के लिए कुछ करना श्रमदान ! तो फिर अपना काम किसे कहेंगे बाबा ?

महात्माजी—बहुत अच्छी नम्रता है तुम्हारी । पर सोचो तो सही, दूसरे भी तो इस सड़क और पुल से निकलेंगे ?

आलोक—अवश्य ।

महात्माजी—और तुम सब भी दूसरों द्वारा निर्मित सड़कों और पुलों पर चलोगे ?

आलोक—जी ।

महात्माजी—यों तुम्हारा श्रमदान हुआ सबके लिए और सबका श्रमदान हुआ तुम्हारे लिए । यों श्रम का समान वितरण हो गया ।

आलोक—जी ।

महात्माजी—दान का अर्थ ही है, समान वितरण।

आलोक—जी।

महात्माजी—इसी अर्थ में मेरा सन्तोष यह कहने के लिए उमँगता है कि—

गीत

तूने जनम लिया।

धरतीभर के लिए धरा पर, तू ने जनम लिया—तूने०—

तू सूरज-सा तू चन्दा-सा, माँ का लाल कहाया।
ग्रहण पड़ा पर रहा निडर तू, मिटी अस्त की छाया॥
चमक उठा जग ज्योंही तूने, अपना उदय किया—तूने०—

घर परिवार गाँव सब तेरा, प्रिय प्रदेश भी तेरा।
पर ये सब अर्पित स्वदेश पर, देश विश्व का चेरा॥
विश्व भक्ति के लिए विश्व में, तूने जनम लिया—तूने०—

धीरज साहस संगी तेरे, तू है प्रेम पुजारी।
सहज सींच दे सत्य सुधा से, तू जग की फुलवारी॥
जगत कहेगा जग में तूने, जीवन धन्य किया—तू०—

आलोक—आशीर्वाद दो बाबा कि हम सब आपके इस मन्त्र के अनुसार बन सकें, अपना जीवन धन्य कर सकें।

महात्माजी—मैं क्या बेटा, संसार की फुलवारी का मालिक तुमसे अपनी बगिया हरी-भरी होते देख तुम पर अपना वरद्-हस्त रखेगा, अपनी शक्ति बिखेर देगा।

[सहसा घबराये हुए रामदत्त का प्रवेश]

रामदत्त—[आलोक से] गजब हो गया बेटा, गाज गिर पड़ी लाल! [गिर पड़ते हैं]

आलोक—[सँभालकर] क्या हुआ काका?

रामदत्त—बेटा, नवीन चल बसा।

[आँसुओं की धार प्रवाहित हो उठती है]

आलोक—[स्तम्भित से] एं, उसे तो बीमार भी नहीं सुना !

रामदत्त—हाँ बेटा, जहर खा लिया उसने ।

आलोक—अरे ! और उपचार नहीं किया ?

रामदत्त—जाना ही नहीं किसीने ।

आलोक—क्यों खा लिया ?

रामदत्त—लिखकर रख गया है ।

आलोक—क्या ?

रामदत्त—इस जन्म में तो नौकरी मिलेगी नहीं, तो दूसरा जन्म लेने जा रहा हूँ ।

आलोक—ओफ !

महात्माजी—[एक लम्बी साँस लेकर आलोक से] यह जहर सभी ऐसे युवकों की घात में है, जिसका उपचार केवल यही है, जो तुम कर रहे हो ।

रामदत्त—घर चलो बेटा, पुलिस हम लोगो को फँसाने का कुचक्र रच रही है ।

[आलोक मौन]

रामदत्त—[हाथ जोड़कर] जल्दी चलो बेटा, माफ कर दो मेरा कसूर, माफ कर दो, चलो ।

आलोक—अरे ! यह क्या कहने लगे काका ?

रामदत्त—हाँ बेटा, सफाईवाले दिन कितना अनुचित कर बैठा था मैं ।

आलोक—आप भी काका··।

महात्माजी—जाओ बेटा ।

आलोक—[महात्माजी से] कृपया आप रुके रहें, मैं अभी आता हूँ । [सबसे] जाओ, बाबा के लिए सारी व्यवस्था करो ।

[जाते हैं]

—पटाक्षेप—

द्वितीय दृश्य

[रामचरण का दरवाजा। पूती झाड़ू लगाकर कूड़ा इकट्ठा करता है, पास ही पल्वा रखा है। देवीदीन आता है।]

देवीदीन—कौन पूती ?

पूती—हाँ।

देवीदीन—अरे राम-राम ! तुझे गोबर-कूड़ा करना पड़ता है ?

पूती—हूँ।

देवीदीन—क्या मिलती है गोबर डलवाई ?

पूती—हूँ।

देवीदीन—रोटी मिलती होगी और क्या ?

पूती—हूँ।

देवीदीन—खाने को तभी दिया जाता होगा, जब गोबर-कूड़ा कर लेता होगा ?

पूती—हूँ।

देवीदीन—तेरा भैया कैसा राजा बेटा ! कभी करता है वह यह सब ? और तू, धन तेरे की। कुछ भी कदर नहीं तेरी घर में, चमार का काम लिया जाता है तुझसे।

पूती—हूं।

देवीदीन—मेरे यहाँ भी सफाई कर दिया कर। मैं तुझे एक रोटी अधिक दे दिया करूँगा।

[पूती पल्वा झाड़ छोड़कर अन्दर चला जाता है। घर से रामचरण आता है।]

रामचरण—अरे देवीदीन भैया, राम-राम !

देवीदीन—राम-राम भैया, राम-राम ।

रामचरण—और भैया है तो सब आनन्द ?

देवीदीन—हाँ, सब दया है भगवान् की ।

रामचरण—[पल्वा-झाड़ू देखकर] अरे पूती, कहाँ चला गया ?

देवीदीन—वह तो घर भाग गया ।

रामचरण—लजा गया होगा आपको देखकर । सौ बार पीटो-फुसलाओ, तब कहीं आता है राह पर ।

देवीदीन—वह तो तौहीन समझता होगा काम करने में ।

रामचरण—अरे भैया, कुछ न पूछो । बड़ा पढ़ रहा है, तो लाट साहब समझता है अपने को । यह भी उसकी देखादेखी बिगड़ा जा रहा है ।

देवीदीन—तो सँभालो न ?

रामचरण—मुझे क्या, सयाने होंगे तो अपने-आप सँभलेंगे, नहीं तो झख मारेंगे ।

देवीदीन—मेरे यहाँ तो लड़के अब बहुत हाथ बँटा रहे हैं घर-गृहस्थी के काम में ।

रामचरण—एँ !

देवीदीन—हाँ भैया, थोड़े ही दिन में गाँव का पूरा रंग बदल गया । लड़के अपने-अपने शरीर के अनुसार पूरी मदद करते हैं घरवालों की ।

रामचरण—यह क्या अचम्भा सुना रहे हो भैया ?

देवीदीन—सो तो जो सुनेगा, अचम्भा मानेगा । पर एक दिन आकर देखिये, नियम से बड़े तड़के उठना, शौच जाना, कुल्ला-दातौन करना, काजल-तेल लगाना, सब कुछ इस ढंग से कि देखते ही बनता है ।

रामचरण—अच्छा !

देवीदीन—घर की सफाई तो इस चाव से करते हैं कि क्या कहूँ ।

रामचरण—ओ हो !

देवीदीन—सातवें दिन गाँव की सामूहिक सफाई होती है। लड़के इतने उत्साह से काम करते हैं कि जान पड़ता है, जैसे कोई त्योहार हो आज।

रामचरण—कौन-सा जादू कर दिया आपने उन पर, हमें भी सिखा दो।

देवीदीन—मैं भला किस खेत की मूली ! यह सब आलोक बाबू की देन है, वही आलोक बाबू !

रामचरण—अच्छा !

देवीदीन—हाँ, उन्होंने गाँव में खोली है ग्रामशाला, वहीं से पाते हैं सब यह तालीम।

रामचरण—तो भैया, हमारे गाँव में भी खुलवा दो एक ग्रामशाला।

देवीदीन—खुलवा कौन दे, गाँववाले मिलकर खोल लें।

रामचरण—भैया की बातें, तब तो हो चुका।

देवीदीन—क्यों कुछ कठिन थोड़े ही है, बिल्कुल आसान। इरादाभर हो जाय कि खुल गयी।

रामचरण—अच्छा।

देवीदीन—एक दिन आकर देख जाओ, अपने-आप समझ लोगे सब।

रामचरण—जरूर आऊँगा भैया ! अच्छा, अब घर चलो। कुछ नाश्ता-पानी करो, चलो।

[दोनों अन्दर जाते हैं]

—पटाक्षेप—

तृतीय दृश्य

[एक सार्वजनिक मार्ग पर खड़ा राजनाथ गा रहा है]

गीत

जगत में बेकारी है पाप।

बेकारी में नित्य सूझते, नये-नये उत्पात।

काम नहीं, तो हो जाते है बड़े-बड़े अपघात॥

कभी नहीं बैठता चित्त चुप, गुनता रहता पाप—जगत में०—

जिये व्यर्थ बन भार जगत में, जो केवल बेकार।

किन्तु अरे, बेकार कहाँ वह, वह पूरा बदकार॥

नहीं स्वप्न में सोच सकेगी, दुनिया उसके पाप—जगत में०—

राजनाथ—[माथा पकड़कर] ओफ, क्या कहते होंगे भैया, क्या कहते होंगे पिताजी, और माँ, वह तो सुनते ही सिर पटक देगी। ओफ, माॅ, मेरी प्यारी माॅ, तू ने मुझे जन्म देकर खुशी मनायी होगी, कुछ उम्मीदें की होंगी, कुछ सपने देखे होंगे। माँ, पर मैं अभागा, ओफ खैर, अब तू मेरी मौत पर भी खुशी मना लेना माॅ। पर नहीं माॅ, तू माॅ है, मैं कितना भी बुरा, कितना ही खोटा, पर तेरा बेटा हूँ, तेरे जिगर का टुकड़ा हूॅ, तू मेरी मौत सुनकर पछाड़ खाकर गिर पड़ेगी माॅ, दम तोड़ देगी। तू ने मुझे पढ़ाया, लिखाया, सब कुछ किया मेरे लिए, पर मै बनकर तैयार हुआ ऐसा। माॅ, नाम डुबा दिया तेरा, दूध लजा दिया तेरा, क्या मुँह दिखाऊँगा

तुझे, नहीं, नहीं दिखाऊँगा। [पिस्तौल निकालकर] प्यारी पिस्तौल, मदद कर मेरी, उद्धार कर मेरा। [चूमता है, कारतूस भरता है।] पर कपड़ो, बेगुनाह कपड़ो! तुम क्यों शिकार बनो। [कपड़े उतारकर पिस्तौल छाती पर दागना ही चाहता है कि ओट में यह सब देख रहे आलोक बाबू हाथ पकड़कर मोड़ देते हैं। फायर की आवाज के साथ गोली व्यर्थ चली जाती है।]

राजनाथ—[सजल नेत्रों से आलोक की ओर देखकर, फिर तुरत सिर नीचा कर] ओफ!

आलोक—यह क्या ?

राजनाथ—निष्ठुर दुनिया को आखिरी नमस्कार।

आलोक—आखिरी नमस्कार, इस प्रकार ? क्या तुम्हारा दावा है कि यों तुम दुनिया में दुबारा न आओगे ?

राजनाथ—नहीं, मैं अभागा भला आवागमन से क्या मुक्त हो सकता हूँ।

आलोक—तब ?

राजनाथ—इस शरीर से तो मुक्ति मिल जायगी।

आलोक—क्यों, शरीर से मुक्ति क्यों ?

राजनाथ—बेकारी से मुक्ति पाने के लिए।

आलोक—कहाँ तक पढ़े हो ?

राजनाथ—बी० ए० कर चुका हूँ।

आलोक—फिर भी बेकार ?

राजनाथ—इसीलिए तो बेकार। अपढ़ गँवार होता, तो कहीं खेती-मजदूरी ही कर लेता।

आलोक—हूँ !

राजनाथ—हाँ भैया, बीसों इण्टरव्यू किये, सैकड़ों जगह भटका, पर बेकार का बेकार, कहीं ठिकाना नहीं।

आलोक—अच्छा !

राजनाथ—हाँ भैया, इसीलिए आज···

आलोक—ये कपड़े क्यों उतार दिये ?

राजनाथ—इनका कुछ मूल्य है। ये काम के हैं, तो किसीके काम आ जायँगे।

आलोक—अच्छा ! और इतना मूल्यवान् यह शरीर किसी काम का नहीं ?

राजनाथ—अरे भैया, इसका भी कुछ मूल्य है ? कौड़ी काम का नहीं, निरा भार।

आलोक—अच्छा, तो लो पचास, लाओ एक अँगूठा। [राजनाथ चुप] लो सौ, लाओ एक कान। [राजनाथ मौन] लो दो सौ, लाओ एक आँख। [राजनाथ निरुत्तर] लो पाँच सौ, लाओ एक पाँव। [राजनाथ अवाक्] लो हजार, लाओ एक हाथ। दो हजार लो, पाँच हजार लो, लाओ। [राजनाथ स्तम्भित] इतना मूल्यवान् शरीर पिस्तौल के हवाले ! अँगड़ाई ले लो तो धरती हिल जाय। चलो मेरे साथ, मैं दूँगा तुम्हें नौकरी।

राजनाथ—[जाग्रत-सा होकर] जी !

आलोक—हाँ, जहाँ सब नौकर, सब मालिक, सब समान।

राजनाथ—कुछ समझ में नहीं आ रहा है भैया।

आलोक—चलो भी तो मेरे साथ। यदि मैं तुम्हें कभी अपने से घटकर समझूँ, तो मुझे ही निकाल देना।

राजनाथ—इतनी बड़ी कृपा बरसानेवाले भैया, आप हैं कौन ?

आलोक—मै हूँ आलोक, बाबू जनार्दनप्रसादजी का लड़का।

राजनाथ—[साश्चर्य] एँ !

आलोक—हाँ, एम० ए० फर्स्ट क्लास फर्स्ट, आई० ए० एस० होते

क्या दूर लग सकती थी मुझे, पर मैं नौकरी की ओर ध्यान भी न ले गया। बस, जुट गया एक प्रयोग में।

राजनाथ—किस प्रयोग में ?

आलोक—धरती से सोना उगाने में।

राजनाथ—कहाँ उगा रहे हैं आप वह सोना ?

आलोक—अपने ही गाँव में, जहाँ हमारे पसीने की बूँदें धरती पर गिरकर मोती बन जाती हैं।

राजनाथ—जी !

आलोक—हाँ, जहाँ हमारे श्रम-बिन्दुओं से धरती पिघल उठी, वह सोना उगलने लगी, अमृत उगलने लगी, बसन्त बिखेरने लगी।

राजनाथ—तो क्या आप खेती··· ?

आलोक—हाँ-हाँ खेती। झिझको मत। बस, चल दो। वहाँ बहुत से शिक्षित नवयुवक इस प्रयोग में जुटे हैं, बड़े ही गर्व के साथ, बड़े ही सन्तोष के साथ।

राजनाथ—धन्य हैं आलोक भैया, मुझे आपने नवजीवन प्रदान किया, मेरे साथ असीम उपकार किया। मैं आत्म-समर्पण करता हूँ।

[राजनाथ हाथ जोड़कर झुकता ही है कि आलोक उसे उठाकर हृदय से लगा लेते हैं।]

आलोक—[सस्नेह] तुम कोस रहे थे बेकारी को, पर मैं सोचता हूँ—

गीत

मानव कभी नहीं बेकार !
वह तो महा-शक्ति भण्डार ॥

चाहे जहाँ वसन्त खिला दे, चाहे जहाँ बहार ।
चाहे जहाँ बहा दे जग में, सुख-समृद्धि की धार ॥ मानव०—

अलसाया बैठा है जब तक, तब तक ही बेकार ।
जहाँ किया पुरुषार्थ पराक्रम, मिला स्वर्ग का द्वार ॥ मानव०—

राजनाथ—[दीर्घ निश्वास छोड़कर] ठीक ही सोचते हैं आप ।
आलोक—अच्छा, अब कपड़े पहनो और चलो ।

[राजनाथ कपड़े पहनता है । दोनो जाते हैं ।]

—पटाक्षेप—

चतुर्थ दृश्य

[श्री दिवाकरप्रसादजी आसनी बिछाकर पूजा करने बैठे हैं। पूर्ववत् जल छिड़कते, इन्द्रियो का स्पर्श करते तथा प्राणायाम चढ़ाते हैं। फिर नेत्र बन्द किये माला जपने लगते है।]

दिवाकर—[नेत्र बन्द कर माला जपते हुए ! रमचन्ना !

रामचरण—[आकर] जी।

दिवाकर—घी तो घर मे बनने ही लगा !

रामचरण—जी।

दिवाकर—इतना बन गया है कि कुछ दिन घर के लिए काम चल सके ?

रामचरण—जी।

दिवाकर—तो बाजार के लिए भी कुछ बना ले।

रामचरण—तो जो बनता जाय, उसे बाजार भिजवा दिया कीजिये।

दिवाकर—धत् तेरे की, बाजार के लिए असली घी !

रामचरण—तब ?

दिवाकर—मैंने कई बार घर में भी कहा, पर वे सुनती ही नहीं। तो तू कर लिया कर वैसा।

रामचरण—क्या ?

दिवाकर—तेनू तू ही तो गरम करता है ?

रामचरण—जी।

दिवाकर—बस, उसी समय उसमें चुपचाप डाल दिया कर डालडा।

रामचरण—ऐं !

दिवाकर—हाँ-हाँ।

रामचरण—कैसे छिपा पाऊँगा यह सब माताजी से ?

दिवाकर—पूरा मूर्ख है तू। डाल्डा मेरी आल्मारी में रखा रहेगा, तो मुझसे ले लिया करना।

[रामचरण जाता है]

दिवाकर—पर याद रख, कहना नहीं किसीसे, नहीं तो तेरी वह कुगति करूँगा कि तू भी याद करेगा। समझ गया ! अबे बोलता क्यों नहीं ?

शिवनाथ—[आकर] किसे बुला रहे हैं आप ?

दिवाकर—कौन बड़े लाला ?

शिवनाथ—हाँ।

दिवाकर—रमचन्ना को डाँट रहा था।

शिवनाथ—वह तो यहाँ आसपास भी नहीं। [अन्दर चले जाते हैं]

दिवाकर—[सक्रोध] रमचन्ना !

रामचरण—[आकर] जी।

दिवाकर—[डाँटते हुए] अच्छा, मैं कहता ही रहा और तू चला गया अन्दर, गधा कहीं का !

रामचरण—दूध उफन जाने के डर से चला गया।

दिवाकर—कुछ भी हो, खबरदार, यदि बिना बताये चला गया कभी, जा।

[रामचरण जाता है, प्रमोद आकर जोर-जोर से पैर पटकता है।]

दिवाकर—कौन ?

प्रमोद—मै हूँ प्रमोद।

दिवाकर—यह क्या कर रहा है ?

प्रमोद—पैर सो गया है बाबा।

दिवाकर—तो ?

प्रमोद्—जगा रहा हूँ उन्हें।

दिवाकर—तो यों जगा रहा है पट्ट पट्ट पट्ट, धरती कँपाकर ?

प्रमोद्—तो और कैसे जगाऊँ ?

दिवाकर—भाग यहाँ से, आया और विघ्न डाल दिया पूजा में।

प्रमोद्—मेरा पैर सो गया है, आपको पूजा की पड़ी है। [जाता है]

[दिवाकरप्रसाद माला मस्तक से लगाकर और चूमकर रख देते हैं। फिर आचमन करते हैं।]

प्रमोद्—[आकर] चाचाजी कहाँ हैं बाबा ? अब तक नहीं आये।

[दिवाकरप्रसाद प्रश्न सुनकर गम्भीर और उदास हो जाते हैं]

प्रमोद्—बताइये बाबा, मैं दौड़ जाऊँ, लिवा लाऊँ उन्हें। दिवाली को बहुत अच्छे पटाखे ले आयेंगे वे।

[दिवाकरप्रसाद के नेत्र सजल हो जाते हैं]

प्रमोद्—अरे बाबा, आप रोने क्यों लगे ?

दिवाकर—नहीं बेटा, आँखें दुःख रही हैं मेरी। तू घर जा, अपने पिताजी को भेज।

[प्रमोद घर जाता है। थोड़ी देर में शिवनाथ आते हैं।]

दिवाकर—कुछ लगा पता ?

शिवनाथ—हाँ, सुधांशु का अनुमान है कि उसने जनार्दन बाबू के लड़के आलोक के साथ उसे कहीं देखा है।

दिवाकर—तो सकुशल होगा बेटा।

शिवनाथ—मैंने गोपाल को भेजा है देख आने के लिए। आ जाय, तब जाऊँगा मैं।

दिवाकर—मैं भी चलूँगा।

शिवनाथ—हाँ-हाँ।

—पटाक्षेप—

पंचम दृश्य

[एक सार्वजनिक मार्ग पर एक ओर पड़ा मंगली कोरी अत्यन्त कारुणिक स्वरो मे निम्नाङ्कित गीत गा रहा है।]

गीत

कोई पार लगा दे।

भँवर पड़ी दुखिया की नैया, कोई पार लगा दे—कोई०—

अंग-अंग गल गये कोढ में, टप-टप रक्त चुवै रे।

पुरजन परिजन संगी साथी, कोई नहीं छुवै रे॥

रहा नहीं कोई अब अपना, जो कुछ धीर बँधा दे—कोई०—

मंगली—[करुण पुकार करते हुए] कोढ़ी, अपाहिज पर दया करें बाबू। दाता का भला हो। पैसा दो पैसा बाबू, भूखी आत्मा है। 'दूधन नहाओ पूतन फरो'। बाबू, मोहताज की दुआ लगे।

[लोग आ-जा रहे हैं। अधिकांश लोग ध्यान नही देते, कुछ पैसा-दो पैसा दे भी देते हैं।]

मंगली—दे दे राम दिला दे राम, दुखिया का दुख हर ले राम।

[आलोक और राजनाथ इसी मार्ग से निकल जाते हैं]

मंगली—[पहचानकर] बाबू, आलोक बाबू !

[आलोक पीछे मुड़कर देखते है]

मंगली—बाबू !

आलोक—[मंगली के निकट आकर] मुझे बुला रहे हो ?

मंगली—हाँ बाबू ! मैं हूँ आपका मंगलिया कोरी।

आलोक—ऐं !

मंगली—हाँ बाबू, आप ही के गाँव का, कोढ़ी हो गया। कोई सहारा नहीं, तो यहाँ-वहाँ भटकता नरक भोग रहा हूँ बाबू।

आलोक—[दीर्घ निश्वास छोड़कर] ओफ !

मंगली—निरंजन बढ़ई के पिछवाड़े मेरा घर था। अब तो चौपट हो गया होगा बाबू !

आलोक—मैंने तो कभी देखा नहीं आपको ?

मंगली—आप बाबू पढ़ते रहे काशी, बनारस—इसलिए··।

आलोक—हूँ।

मंगली—अभी दस-बारह दिन हुए, आप निकले थे इसी राह। निबादा के जगनू बैठे थे मेरे पास। उन्होंने आपको पहचनवाया।

आलोक—अच्छा।

मंगली—बड़ा ही जस गाया आपका। आपका जस दिन दूना रात चौगुना बढ़े। भगवान् आपको हजारी उमर दे बाबू।

आलोक—ओफ !

मंगली—आज फिर देखा, तो बुला बैठा। माफ करें बाबू, कसूर हुआ, अब आप जायँ बाबू। [आँसू गिरते हैं]

आलोक—हम तो जायँगे ही, आप भी चलें।

मंगली—अरे कहाँ बाबू ?

आलोक—गाँव, अपने गाँव।

मंगली—अरे बाबू, कौन बैठा है वहाँ मेरा ?

आलोक—अपने गाँव में सभी अपने हैं।

मंगली—गाँव में यह कूड़ा न फैलाओ बाबू, देखते ही सब नाक-भौं सिकोड़ लेंगे।

आलोक—नहीं, सब आपको प्यार करेंगे।

मंगली—जैसा किया, वैसा भोगने दो बाबू। मुझे ले चलकर गाँव को नरक न बनाओ।

आलोक—आपसे गाँव नरक नहीं, स्वर्ग बनेगा स्वर्ग और बचेगा एक बहुत बड़े पाप से, जो हो रहा है उससे—नित्य-नित्य।

मंगली—क्या कह रहे हो बाबू!

आलोक—ठीक कह रहा हूँ। गाँव है, जो खा रहा है, पी रहा है, सुख में जी रहा है; पर…

मंगली—पर, पर क्या बाबू?

आलोक—पर अपनी ही कोख में जनमे, अपनी ही गोद में खेले, अपने ही जिगर के एक टुकड़े को अपाहिज हो जाने पर भुला बैठा है।

मंगली—अरे बाबू!

आलोक—हाँ, यह गाँव के लिए घोर कलंक की बात है।

मंगली—गाँव के लिए तो घोर कलंक मैं हूँ बाबू!

आलोक—अरे!

मंगली—हाँ बाबू, मैं इतना बड़ा पापी जनमा गाँव में, अपने पापों के कारण मैं हुआ कोढ़ी, सिर नीचा हो गया गाँव का मेरे कारण।

आलोक—और गाँव अपने एक असमर्थ को न खिला सका, न पिला सका, न निभा सका। इस कारण तो वह कहीं मुँह दिखाने योग्य भी न रहा।

मंगली—अरे बाबू, मैं अपने किये का फल भुगत रहा हूँ। इसमें गाँव का क्या दोष?

आलोक—गाँव के पास सैकड़ों घर, पर आपके लिए पैर रखने को ठिकाना नहीं। आप तो भरे जाड़े-पाले में खुले आसमान के नीचे, चिलचिलाती धूप मे तपती सड़क पर अपने आँसुओं से अपने गाँव की निर्दयता बखान रहे हैं।

मंगली—नहीं-नहीं बाबू, मैंने कभी भी, किसीसे भी अपने गाँव की बुराई नहीं की। गाँव जनम का साथी है बाबू, करम का नहीं।

आलोक—आप मर-मरकर जिये, नित्य आहों और आँसुओं से लड़ें और गाँव इस पर ध्यान भी न दे। ओफ!

मंगली—करूँ क्या, पापी पेट नहीं मानता, मौत भी तो नहीं आती, नरक जो भोगना है न?

आलोक—पर अब आप चलिये गाँव मे। हम वहाँ आपकी पूरी सेवा करेंगे।

मंगली—अरे बाबू!

आलोक—हाँ-हाँ, अब आप चल दें।

[आलोक मंगली को उठाना चाहते हैं, राखनाथ भी हाथ लगाता है।]

मंगली—मुझे छूकर छूत न हो बाबू! मैं जैसे-तैसे अड़िल-घमिलकर आ जाऊँगा।

आलोक—नहीं, हम आपको साथ ही...।

मंगली—विश्वास रखें बाबू, मैं आ जाऊँगा।

आलोक—नहीं, साथ ही चलना ठीक रहेगा।

[दोनों उठाकर खड़ा करते हैं। मंगली के अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है। खड़े होते ही उसके अवरुद्ध कण्ठ से एक गीत फूट पड़ता है।]

मंगली—

गीत

पीर पराई जानी बाबू, भला करे भगवान्—
भगवान् तुम्हारा भला करे।
हम-से पंगु अनाथ अपाहिज, हैं धरती पर भार।
काम न आयें रंच किसीके, है बेबस लाचार॥
पेट-पेट रट रहे निरन्तर, और नहीं कुछ ध्यान—
भला करे भगवान्—भग०—
दुखी हुए दुखिया के दुख से, किया अकारण नेह।
पिघल पड़े तुम देख पंथ पर, पड़ी मनुज की देह॥
उठा ले चले सो अपने घर, तुम हो दयानिधान—
भला करे भगवान्—भग०—
अमित भार उपकार नेह का, पड़ा निबल पर आन।
गद्गद कण्ठ बोल ना फूटे, कर न सके गुणगान॥
जुग-जुग जियो, सदा सुख पाओ, जग में बनो महान्—
भला करे भगवान्—भग०—

[सब जाते हैं]

—पटाक्षेप—

षष्ठ दृश्य

[पुत्र-शोक में दुःखी रामदत्त अपने दरवाजे बैठे हैं। महात्माजी आते हैं।]

रामदत्त—आ जाओ बेटा, देखो, स्वामीजी पधारे हैं। आ जाओ बेटा, इनके दर्शन करो, इन्हें प्रणाम करो बेटा, आह !

महात्माजी—[दीर्घ निःश्वास छोड़कर] ओफ !

रामदत्त—अरे, कहाँ छिपे हो बेटा, धरती फाड़कर निकल आओ। स्वामीजी का सत्कार करो, आरती उतारो बेटा।

महात्माजी—आपका बेटा आपकी पुकार के परे पहुँच गया है। अब उसके लिए…।

रामदत्त—आह स्वामीजी, मेरा जवान बेटा, बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँध रखी थीं मैंने। हाय, न रोग, न दोख, असमय गाज गिर पड़ी स्वामीजी ! [भूमि पर सिर पटक देते हैं]

महात्माजी—[सँभालकर] आप अपने परिवार के बड़े-बूढ़े हैं। जब आप ही इतने अधीर होंगे, तो…

रामदत्त—हाय, इस बुढ़ापे का सहारा लाल उड़ गया। हाय, पल में प्रलय हो गयी, बिजली गिर पड़ी स्वामीजी, आह !

महात्माजी—धीरज धरिये। अभी रावी बाबू का लड़का शहर में चली गोली का शिकार हुआ। छाती पीट डाल रहे हैं बेचारे। यही एक लड़का था, अब न कोई आगे न पीछे। नरेन्द्रजी का लड़का एफ० ए० में फेल हो गया, तो रेल से जा कटा। दम तोड़ दे रही है माँ ! पर धैर्य !

रामदत्त—[चित्र देकर] अभी एक सप्ताह हुआ, उतरवाया था यह चित्र। मुस्कराता हुआ चेहरा। आह! मिट्टी में मिल गया स्वामीजी! हाय, फट जा धरती और समा जाऊँ मैं!

महात्माजी—मौत के बाद कोई लौटा नहीं। आप मोह छोड़ें, धीरज धरें।

रामदत्त—कोई काम नहीं छूने दिया बेटे को। सदा आराम के हिंडोले पर झुलाया, पर हाय रे होनहार!

महात्माजी—यह होनहार आकस्मिक नहीं, इसकी जड़ें हम सब ने बहुत ही गहराई तक पहुँचा दी हैं। पता नहीं, अभी ऐसी कितनी होनहारों का सामना करना है।

रामदत्त—आह स्वामीजी, बेकारी खा गयी मेरे लाल को।

महात्माजी—ऐं!

रामदत्त—हाँ महाराज, तीन वर्ष हुए बी० ए० किये, हजारों बरबाद हुए दौड़ने-धूपने में; पर न बाहर काम मिला, न घर में शान्ति। हाय, यह हाय-हाय निगल गयी मेरे लाल को।

महात्माजी—क्या-क्या सोचेंगे आप। यह प्राणघातक बेकारी नदी, गोली, जहर, फाँसी, रेल आदि न जाने कितने मुँहों से हमारे नौनिहालों को निगलती चली जा रही है।

रामदत्त—हाय, लाड़-प्यार में पला लाल बाप के हाथों चिता पर रखा गया। हाय रे अभाग्य! [माथा पीटते हैं]

महात्माजी—चिता तक कौन ले गया उसे?

रामदत्त—मैं, अपने लाड़ले लाल का अभागा बाप। हाय राम!

महात्माजी—नहीं, चिता पर ले गयी उसकी शिक्षा-दीक्षा, जिसने उसे पुरुषार्थहीन बना दिया, निकम्मा बना दिया।

रामदत्त—अरे स्वामीजी।

महात्माजी—हाँ-हाँ, चौदह वर्ष तक पढ़-लिखकर युवक बेकार!

आश्चर्य! एक-एक इंच धरती अनेक धन्यों और रत्नों की खान है। वह प्रतीक्षा कर रही है ऐसे सपूतों की, जो आयें, कुछ पुरुषार्थ करें, कुछ कर दिखायें।

रामदत्त—[आह भरकर] हे भगवन्!

महात्माजी—आपके आगे छोटे-छोटे बच्चे हैं। मैं चाहूँगा, आप उनकी शिक्षा-दीक्षा की सही विधि स्वीकार करें, अनुचित सुख-सुविधा से दूर रखकर उन्हें ऐसा बनने दें, जिससे वे स्वयं सुखी रहें और आप सबको सुखी रखें।

रामदत्त—हाय महाराज! आलोक बहुत समझाता रहा, पर मेरी ही बुद्धि पर पत्थर पड़े रहे। नहीं तो आज यह दिन न देखना पड़ता।

[एक लड़का तश्तरी में कुछ खाने को और गिलास में पानी लाकर रामदत्त के सम्मुख रख देता है।]

रामदत्त—लीजिये स्वामीजी, जलपान कर लीजिये।

महात्माजी—मैं?

रामदत्त—हाँ महाराज।

महात्माजी—नहीं, आप थोड़ा-सा जलपान कर अपने को शान्त करें, औरों को धीरज दें।

रामदत्त—हाय राम, कैसे धँसेगा यह?

[स्वामीजी बड़े ही स्नेह से अपने हाथ से एक ग्रास रामदत्त के मुँह में रखने का प्रयत्न करते हैं, रामदत्त के नेत्रों में आँसू बरसने लगते हैं। वे स्वामीजी से लिपट जाते हैं।]

—पटाक्षेप—

सप्तम दृश्य

[राजनाथ एक कन्धे पर फावड़ा, दूसरे पर कुदाल लिये आता है ।]

राजनाथ—[कुदाल भूमि पर खटखटाकर]

गीत

मिट्टी भरी कुदाल चली ।
मिट्टी भरी कुदाल चली, मिट्टी के गीत सुनाने ।
चला फावड़ा पाँच उँगलियों का गुण गौरव गाने ॥
फड़क उठी उँगली-उँगली—मिट्टी०—
श्रमिकों के प्रति घृणा मिटाने, आदर भाव जगाने ।
चली अन्नदाता किसान का, सच्चा सखा बनाने ॥
चली खिलाने हृदय-कली—मिट्टी०—
झलकाकर श्रम-बिन्दु देह पर, श्रम-देवता जगाने ।
ज्ञान कर्म भक्ति की त्रिवेणी, जन-जन में हहराने ॥
महा क्रान्ति की लहर चली—मिट्टी०—

[कुदाल से खेत गोड़ने लगता है, दिनेशचन्द आता है ।]

दिनेशचन्द—[मुस्कराकर] ओ हो, यह क्या हो रहा है ?

राजनाथ—[खड़े होकर] नयी तालीम पा रहा हूँ, नित्य नयी तालीम ।

दिनेशचन्द—अच्छा, बी० ए० करने के बाद अब यह तालीम ?

राजनाथ—इसलिए कि इस तालीम में जीवन है । इतना ही नहीं, यह स्वयं साक्षात् जीवन है ।

दिनेशचन्द—एँ !

राजनाथ—जी हाँ, अब तक की शिक्षा निरी निरर्थक ही नहीं, हानिकारक भी रही।

दिनेशचन्द्—आज यह आश्चर्यजनक परिवर्तन कैसा ?

राजनाथ—परिवर्तन की बात नहीं भैया, आप तो मेरे बाल-सखा हैं, जीवन-संगी हैं।

दिनेशचन्द्—अवश्य !

राजनाथ—वह शिक्षा पाकर मैंने इन हाथों से वह किया, जिसके लिए ये उठने ही न चाहिए थे। आँखों से वह देखने मे प्रसन्न रहा, जिसके लिए आँखें फेर लेनी चाहिए थीं।

दिनेशचन्द्—हाँ।

राजनाथ—कानों से वह सुनने में आनन्द अनुभव किया, जिसके लिए कान बन्द कर लेने चाहिए थे। मुँह से वह-वह कहा, जिसके लिए मुँह खोलना ही न चाहिए था।

दिनेशचन्द्—हाँ।

राजनाथ—पर अब वास्तविक शिक्षा, जीवन-शिक्षा पाना प्रारम्भ कर दिया है, तो सन्तोष है।

दिनेशचन्द्—फावड़ा-कुदाल चलाकर ?

राजनाथ—हाँ, अब हाथों द्वारा मस्तिष्क शिक्षित कर रहा हूँ, जीवन शिक्षित कर रहा हूँ।

दिनेशचन्द्—मस्तिष्क या जीवन शिक्षित होगा फावड़ा-कुदाल से ? कैसी बात कर रहे हैं आप ?

राजनाथ—इन पाँच उँगलियों में अपार शिक्षण-शक्ति भरी है। मुझे उसके गुण-गौरव का दर्शन हो रहा है।

दिनेशचन्द्—अच्छा, तो आप रचनात्मक कार्यों के प्रति आस्थालु होते जा रहे हैं ?

राजनाथ—रचनात्मक कार्य का क्या अर्थ लगाते है आप ?

दिनेशचन्द्—यही फावड़ा-कुदाल, चरखा-करघा चलाना, और क्या ?

राजनाथ—नहीं, रचनात्मक कार्य का अर्थ रचनासम्बन्धी कार्य।

दिनेशचन्द्—स्वीकार, तो ?

राजनाथ—निर्माण का अर्थ अपना निर्माण करना, मनुष्य बनना।

दिनेशचन्द्—तो क्या आपका दावा है कि आप मनुष्य बन गये ?

राजनाथ—नहीं, मैं ऐसा दावा करने का दम्भ नहीं कर सकता। पर इतना दावा अवश्य कर सकता हूँ कि यों मनुष्य बनने का प्रयत्न तो कर ही रहा हूँ।

[महात्माजी का प्रवेश। हाथ जोड़कर दोनों प्रणाम करते है।]

महात्माजी—[प्रसन्न मुद्रा में हाथ से आशीर्वाद देते हुए] अच्छा, जुटे हो अपने उद्योग में, शावाश !

राजनाथ—आपने ही कहा था बाबा, आजादी सुखो की फुलवारी होगी। पर वह फुलवारी हमें ही लगानी होगी, हमें ही सींचनी-गोड़नी होगी। उसके लिए हमें ही कठोर श्रम करना होगा।

महात्माजी—अवश्य कहा था बेटा !

राजनाथ—तव तो नहीं, पर अब समझ मे आ गया, भलीभाँति आ गया।

महात्माजी—बहुत अच्छे बेटा ! ईश्वर वह मुहूर्त अविलम्ब ला दे, जब देश का प्रत्येक नवयुवक शरीर-श्रम के प्रति जागरूक हो उठे, उत्पादक श्रम करने लगे, उद्योगों द्वारा शिक्षा ग्रहण करने लगे।

दिनेशचन्द्—मुझे यहाँ एक बहुत बड़ी शंका है बाबा !

महात्माजी—समाधान कर सकते हो।

दिनेशचन्द्—उद्योगों द्वारा शिक्षा से अनेक लाभ होंगे, पर एक बहुत बड़ी हानि भी होगी।

महात्माजी—क्या ?

दिनेशचन्द्—बुद्धि का विकास रुक जायगा ।

महात्माजी—नहीं बेटा, बुद्धि और उद्योग के बीच कोई दीवार नहीं, उद्योग में ही बुद्धि का विकास छिपा है। तुम किसी उद्योग का नाम लो, जिसके बारे मे शंका हो ?

दिनेशचन्द्—चरखा ही ले लीजिये ।

महात्माजी—चरखे की हर क्रिया का कारण, उसके हर कल-पुर्जे का ज्ञान, कपास का इतिहास, उसका सभ्यता के साथ सम्बन्ध आदि सब कुछ जानना ही होगा ?

दिनेशचन्द्—अवश्य ।

महात्माजी—यह बुद्धि का विकास ही तो है ।

दिनेशचन्द्—अच्छा, पर दीवार चुननेवाले राजमिस्त्री ?

महात्माजी—राजमिस्त्री यदि आजीविका पैदा करनेभर का ही ज्ञान रखते हैं, तो वह शिक्षा ही नहीं ।

दिनेशचन्द्—तब ?

महात्माजी—समाज मे इस उद्योग का क्या स्थान है, ईंट क्या है, घर कैसे होने चाहिए, घर का सभ्यता के साथ क्या सम्बन्ध है, इन सबका ज्ञान शिक्षा है और इसीमें बुद्धि का विकास है ।

दिनेशचन्द्—जी ।

महात्माजी—ऐसे ही विकसित बुद्धिवाले राजमिस्त्री, बुनकर, बढ़ई सच्चे समाज-सेवक होंगे ।

दिनेशचन्द्—जी ।

महात्माजी—तुम तो जानते होगे, कबीर क्या करते थे ?

दिनेशचन्द्—कबीर करघा चलाते थे, कपड़ा बुनते थे ।

महात्माजी—भोजा भगत क्या करते थे ?

दिनेशचन्द्—वे मोची थे, जूता बनाते थे ।

महात्माजी—गुरु गोविन्द ?

दिनेशचन्द्र—वे किसान थे, खेती करते थे।

महात्माजी—और ईसा ?

दिनेशचन्द्र—सुना जाता है, वे बढ़ईगिरी करते थे।

महात्माजी—क्या तुम इन सबको मन्दबुद्धि कह सकते हो ?

दिनेशचन्द्र—[हाथ जोड़कर] क्षमा करें बाबा, हो गया समाधान।

महात्माजी—यों इन सबका केवल बुद्धि-विकास ही नहीं हुआ, वरन इनके उद्योगों में से अमर वाणी प्रकट हुई, चिरन्तन वाङ्मय जनमा, आध्यात्मिक विकास हुआ।

दिनेशचन्द्र—अवश्य हुआ बाबा !

महात्माजी—और सुनो, हाथ से काम में होता है शरीर-श्रम, बहता है पसीना।

दिनेशचन्द्र—जी।

महात्माजी—तो हम पसीने की एक-एक बूँद का मूल्य आँकते हैं। बस, उसी क्षण होता है किसान, मजदूर, श्रमिकों के प्रति तादात्म्यभाव, उत्पन्न होता है आदर भाव।

दिनेशचन्द्र—जी।

महात्माजी—कितना असीम उपकार, कितना असीम ऋण लदा है इनका दुनिया पर, समझ में आ जाता है।

दिनेशचन्द्र—सारी दुनिया इन्हींके सहारे जी रही है, स्वर्ग-सुख भोग रही है।

महात्माजी—क्या कभी वह उऋण हो सकती है इनसे ?

दिनेशचन्द्र—कभी नहीं, वह तो उलटे इन्हें ठुकरा रही है, इनका अनादर करती है, इनसे घृणा करती है। यों इन पर अत्याचार ही कर रही है।

महात्माजी—बस बेटा, जब तुम सरीखे युवक के हृदय में यह

भाव उदय होते देखता हूँ; तो जी गद्‌गद हो उठता है, आत्म-विभोर हो उठता है।

दिनेशचन्द्—[लम्बी साँस लेकर] ओफ !

महात्माजी—यही भाव मनुष्य को मनुष्य के निकट पहुँचाता है, मनुष्यता के निकट पहुँचाता है, उसमें प्रेम और करुणा का संचार करता है।

दिनेशचन्द्—[सरोष] साथ ही जगाता है इस निष्ठुर दुनिया को, इस कृतघ्न दुनिया को उलट देने के लिए, क्रोध, आवेश, रोष।

महात्माजी—शान्त हो वेटा, इस नयी तालीम की शरण जाओ, अपने-आप पलट जायगी दुनिया। कुछ के लिए नहीं, सबके लिए स्वर्ग बन जायगी।

दिनेशचन्द्—[दीर्घ निश्वास छोड़कर] ओफ !

महात्माजी—हाथ के काम से एक लाभ और।

दिनेशचन्द्—क्या ?

महात्माजी—इसमें जीवन के क्षण-क्षण का सदुपयोग होता है, दिनभर का हारा-थका शरीर रात को सोता है—अच्छी नींद की गोद में, निश्चिन्त, निर्विकार।

दिनेशचन्द्—जी, अब झाड़ू का भी रहस्य समझा दीजिये।

महात्माजी—सफाई एक उद्योग है और झाड़ू है उसका अस्त्र।

दिनेशचन्द्—सफाई और उद्योग ?

महात्माजी—हाँ वेटा, गोवर-कूड़ा, मल-मूत्र उत्तम खाद बनकर कितनी उपज बढ़ाता है, तो कितना मूल्यवान् हुआ ?

दिनेशचन्द्—बहुत अधिक।

महात्माजी—इन सबका सदुपयोग करना उद्योग नहीं, तो और क्या है ? [मुस्करा देते हैं]

दिनेशचन्द्—जी !

महात्माजी—फिर सफाई स्वास्थ्य का पथ्य है, तो झाडू उसका आधार।

दिनेशचन्द्—जी, एक बात और समझा दीजिये बाबा !

महात्माजी—पूछो।

दिनेशचन्द्—उद्योग द्वारा शिक्षा में से आइन्स्टीन सरीखे वैज्ञानिक कैसे उदित होंगे ?

महात्माजी—ठीक ही पूछा तुमने, पर एक बात बताओ, कितने आइन्स्टीन जनमे अब तक ?

दिनेशचन्द—आइन्स्टीन भी क्या अनेक ? वह तो बस एक, केवल एक जनमा।

महात्माजी—नहीं बेटा, इस भूमि पर ऐसे न जाने कितने लाल जनमे, जिनमें आइन्स्टीन सरीखा अंश रहा, वैसा ही बीज रहा।

दिनेशचन्द—जी।

महात्माजी—पर वे अनुकूल अवसर उपयुक्त साधनों के अभाव मे उभड़ न सके, चमक न सके।

दिनेशचन्द—अवश्य।

महात्माजी—यों हजारों, लाखों आइन्स्टीन में केवल एक आइन्स्टीन चमक सका और शेष परिस्थिति और अभावों की ओट में विलीन हो गये, खो गये।

दिनेशचन्द—ठीक ही कह रहे हैं बाबा !

महात्माजी—पर इस नयी तालीम में जितने आइन्स्टीन जनमेंगे, सबके सब चमकेंगे।

दिनेशचन्द—ऐसा कैसे बाबा ?

महात्माजी—यहाँ जिसकी जिस विषय में विशेष रुचि होगी, फिर वह चाहे जिस स्थिति में पड़ा होगा, उसके लिए

वैसे ही उपयुक्त साधन जुटाये जायँगे, वैसे ही अनुकूल अवसर दिये जायँगे।

दिनेशचन्द्—जी !

महात्माजी—हाँ, देश में टाटा सरीखी प्रयोगशालाएँ खुली हैं। वे वहाँ जायँगे, अपना विकास करेंगे।

दिनेशचन्द्—समझ गया बाबा, पर टैगोर सरीखे कवि-सम्राट··?

महात्माजी—ऐसे जन्मजात महापुरुष जब झाड़ू, फावड़ा और पुस्तक धारण कर ज्ञान, कर्म और भक्ति की त्रिवेणी में नहायेंगे, तब इनकी वाणी और भी ओजस्वी होगी, अधिकाधिक सफल होगी।

दिनेशचन्द्—धन्य है बाबा, पर इतनी अच्छी तालीम देश में चल क्यों नहीं पा रही है ?

महात्माजी—नयी तालीम एक प्रकृति मिटाना चाहती है। वही प्रकृति इसे चलने नहीं देती।

दिनेशचन्द्—कौन-सी प्रकृति ?

महात्माजी—दूसरों के रक्त-पसीने पर स्वर्ग-सुख भोगने की।

दिनेशचन्द्—जी !

महात्माजी—जिस प्रकृति के कारण मनुष्य शरीर-श्रम से घृणा करता है, उसे हेय, हीन और तुच्छ समझता है। इसी से वह अपने बच्चों को यह तालीम देना अपना अपमान समझता है।

दिनेशचन्द्—जी !

महात्माजी—वैसे राज्यनेता, समाज-नेता, साधक, विचारक सभी इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं, इसके गीत गाते हैं।

दिनेशचन्द्—पर अपने बच्चों को यह तालीम नहीं देते।

महात्माजी—कारण वही।

दिनेशचन्द—तब ?

महात्माजी—नयी तालीम विचार में जँची, वाणी में जँची। यह इसकी बहुत बड़ी विजय रही।

दिनेशचन्द—क्या होता है इतनी विजय से ?

महात्माजी—चिन्ता मत करो बेटा, नयी तालीम अपने में एक क्रान्ति है। अहिंसा की भूमिका पर मनुष्य का सर्वांगीण विकास करनेवाली अभिनव क्रान्ति है, जिसमें कूद पड़ा है यह देखो राजनाथ, एक नवयुवक, एक ग्रेजुएट।

दिनेशचन्द—सो तो मैं भी ऐसा सोच रहा हूँ।

महात्माजी—बस, जब तुम सरीखे नवयुवक इस क्रान्ति में कूद पड़ेंगे, इसे अपने हाथ में ले लेंगे, तब इसे व्यापक होते देर न लगेगी।

दिनेशचन्द—जी, कूद भी तो रहे हैं नवयुवक, एक अजीब जोश के साथ, अद्भुत उमंग के साथ।

महात्माजी—इसीलिए सफलता दूर नहीं, शीघ्र ही स्वागत करने दौड़ी आयेगी।

दिनेशचन्द—अवश्य बाबा !

महात्माजी—[मुस्कराकर] और कुछ ?

दिनेशचन्द—नहीं, सब कुछ समझ गया।

महात्माजी—अच्छा, अब चलूँगा।

[दोनो प्रणाम करते हैं, महात्माजी जाते हैं।]

—पटाक्षेप—

तृतीय अंक

रंगमंच

दृश्य	पात्र	सामग्री
प्रथम	श्याम, शिवदीन, आलोक, देवीदीन	एक बोरा, एक थाल मे खाद्य पदार्थ, एक गन्दा टाट का पर्दा
द्वितीय	प्रमोद, दिवाकरप्रसाद, शिवनाथ, रामचरण	एक पञ्चाङ्ग, घिसा हुआ चन्दन, शीशा, गीता, माला, झोला, फल, नारियल, दो पुस्तकें, एक भरा घड़ा
तृतीय	मंगली, राजनाथ	एक गिलास दूध, एक तश्तरी मे कुछ खाने को, एक लोटा पानी
चतुर्थ	श्याम, दिवाकरप्रसाद, राजनाथ, शिवनाथ	एक फावड़ा, एक कुदाल
पंचम	कलेक्टर, सुपरिण्टेण्डेण्ट	टेलीफोन
षष्ठ	श्याम, आलोक, दिवाकरप्रसाद, राजनाथ, शिवनाथ, महात्माजी	दो फावडे, दो रिस्ट-वाच, एक चरखा, एक कुदाल, एक पुस्तक

प्रथम दृश्य

[शिवदीन का द्वार। सिर पर बोरा लिये श्याम आते हैं]

श्याम—काका, शिवदीन काका !

शिवदीन—[अन्दर से] आया भैया। [आकर] अरे श्याम बाबू, आप, यह बोरा ! [उतरवाते हैं]

श्याम—इसे अन्दर पहुँचा दो काका !

शिवदीन—यह क्या है बाबू ?

श्याम—आपके लिए छोटी-सी भेंट।

शिवदीन—ऐं !

श्याम—हाँ, सुना, आपके घर अन्न के नाम पर दाना नहीं, ऊपर से जवान बेटा बीमार, विपत्ति पर विपत्ति तो···

शिवदीन—तो एक-दो दिन में क्या बिगड़ा जाता है बाबू, भगवान् कुछ न कुछ···

श्याम—अभी चार-छह दिन चलेगा, फिर और करेंगे।

शिवदीन—अरे बाबू, इतना भार न लादो।

श्याम—यह भार नहीं काका, आलोक बाबू सुनेंगे, तो क्या कहेंगे ?

शिवदीन—क्या कहेंगे बाबू।

श्याम—कहेंगे, लोग खा-पीकर, पेट पर हाथ फेरकर सुख से सो रहे और पड़ोस मे एक परिवार भूखा पड़ा रहा। ओफ ! कितने दुःखी होंगे वे।

शिवदीन—अरे बाबू।

श्याम—हाँ-हाँ काका, मैं इसे अन्दर··[उठाने का प्रयत्न करते हैं]

शिवदीन—[हाथ पकड़कर] अरे नहीं बाबू।

श्याम—मानो भी काका ! [एक ओर देखकर] अरे, वह आलोक बाबू भी आ गये।

[आलोक बाबू एक थाल में कुछ लिये आते है। थाल कपड़े से ढँका है।]

आलोक—[थाल शिवदीन की ओर बढ़ाकर] इसे घर पहुँचा दो काका, इसमें आप सबके लिए भोजन है।

[शिवदीन अवाक् रहा। उसकी आँखों से अश्रुधार प्रवाहित होने लगती है।]

आलोक—यह क्या काका, [थाल श्याम को देकर आँसू पोंछते हैं] तुम कैसे आये श्याम ?

श्याम—देवीदीन को बीमार सुना, तो चला आया।

आलोक—अच्छा। [थाल की ओर इंगित कर शिवदीन से] काका, इसे……।

शिवदीन—अरे नहीं बाबू।

आलोक—मानो भी तो, इसे अन्दर पहुँचा दो, नहीं तो ठण्डा हो जायगा।

शिवदीन—अरे बाबू !

आलोक—हाँ-हाँ, ले लो इसे।

शिवदीन—बाबू, अभी ही श्याम बाबू यह बोरा लाये। [बोरे की ओर इंगित करता है]

आलोक—[बोरे की ओर देखकर प्रश्नसूचक दृष्टि से श्याम से] यह…?

श्याम—जी, कुछ गेहूँ, कुछ जौ, कुछ दाल। जोधा, वंशी, लालखाँ और लाखनसिंह ने इतना कर दिया।

आलोक—बहुत अच्छे। थाल काका को दे दो, बोरा हम-तुम अन्दर पहुँचा दें।

[आलोक और श्याम बोरा उठाने का प्रयत्न करते हैं]

शिवदीन—[दोनो के हाथ पकड़कर] रहने दो बाबू, कैसे उऋण होऊँगा, इतनी बड़ी दया से ?

आलोक—नहीं काका, यह दया नहीं, यह तो हमारा धर्म है। [बोरा उठाना चाहते हैं]

शिवदीन—आप रहने दें बाबू, मैं रख लूँगा।

आलोक—अच्छा तो चलो, देवीदीन को देख लूँ।

शिवदीन—चलना कहाँ बाबू, वह तो [एक ओर पड़ा टाट का पर्दा हटाकर] यह पड़ा है।

आलोक—अरे, भूमि पर ?

शिवदीन—घर में खटिया एक ही है बाबू, सो बहू को बेटा हुआ, उसमें अटक गयी है।

आलोक—[लम्बी साँस लेकर] ओफ ! [देवीदीन के मस्तक पर हाथ फेरकर] कैसा जी है देवीदीन भाई ?

देवीदीन—[हाथ जोड़कर सजल नेत्रो से] ठीक ही है बाबू।

आलोक—चिन्ता मत करना, मै दवा का पूरा प्रबन्ध करूँगा। शीघ्र ही चंगे हो जाओगे।

[देवीदीन हाथ जोड़ देता है]

आलोक—अच्छा काका, अब ··चारपाई मैं अभी भेज दूँगा।

शिवदीन—अरे बाबू !

[आलोक चलने को होते हैं, तो श्याम थाल शिवदीन के हाथों में रख देते हैं। फिर आलोक और श्याम जाते हैं। शिवदीन अवाक् खड़ा है, उसके नेत्रो से अश्रुधार प्रवाहित हो रही है।]

—पटाक्षेप—

द्वितीय दृश्य

[दिवाकरप्रसादजी अपने दरवाजे पर बैठे पञ्चाङ्ग देख रहे हैं]

दिवाकर—प्रमोद, अरे बेटा प्रमोद !

प्रमोद—[आकर] जी !

दिवाकर—बड़े लाला क्या कर रहे हैं ?

प्रमोद—भोजन ।

दिवाकर—ठीक, रमचन्ना को भेजो ।

[प्रमोद जाता है, रामचरण आता है ।]

दिवाकर—चन्दन ले आ, घिसा हुआ चन्दन और शीशा भी ।

[रामचरण जाकर चन्दन और शीशा लाता है । दिवाकरप्रसादजी विधिपूर्वक चन्दन लगाते हैं, बीच की बिन्दी बहुत बडी लग जाती है ।]

दिवाकर—देख, ठीक लगा है ?

रामचरण—जी !

दिवाकर—जी, हर बात में जी । अबे, अच्छी तरह देखकर बता । बाहर हँसी हुई, तो सिर तोड़ दूँगा तेरा ।

रामचरण—[भलीभाँति देखकर] बिन्दी कुछ छोटी जान पड़ती है ।

दिवाकर—नित्य गंगा नहाकर भी गधा गधा ही रहा । बिन्दी क्या हाथी-पाँव सरीखी चाहिए ? इतनी ही ठीक ।

रामचरण—जी, लगती तो बहुत ही अच्छी है ।

दिवाकर—अच्छा, अब जा । गीता, माला और झोला ले आ । कुछ फल भी ले आ ।

[रामचरण निर्देशित वस्तुएँ लाता है]

दिवाकर—देख, मुझे जाना है राजनाथ को लेने, आज अनुराधा

नक्षत्र है, चन्द्रमा सामने और योगिनी बायें है, बहुत ही शुभ मुहूर्त है। आज ही जाऊँगा।

रामचरण—जी !

दिवाकर—एक भरा घड़ा ले आ, हाथ से इंगित कर यहाँ दाहिनी ओर रख दे।

[रामचरण घड़ा लाकर निर्देशित स्थान पर रख देता है]

दिवाकर—एक नारियल लाकर घड़े पर रख दे।

[रामचरण नारियल लाकर घडे पर रख देता है]

दिवाकर—ठीक, अब दो ब्राह्मणों को बुला ला। यहीं घड़े के पास खड़ा कर दे। वे अपने-अपने हाथ में कोई पुस्तक लिये हों।

[रामचरण दो ब्राह्मणों को बुलाकर यथास्थान खड़ा कर देता है]

दिवाकर—अब एक गाय लाकर [हाथ से इंगित कर] इधर दाहिनी ओर बाँध दे।

रामचरण—जी !

दिवाकर—जी क्या, चलते समय बछड़े को दूध पिलाती गाय देखने से बड़ा ही शुभ होता है।

रामचरण—पर गायें तो सब दुही जा चुकी हैं। वे अब बछड़े को दूध न पिलायेंगी, दुलत्ती झाड़ने लगेंगी ?

दिवाकर—तो रहने दे।

रामचरण—जी !

दिवाकर—[हाथ से नाक का स्वर पहचानकर] देख, मेरा दाहिना स्वर चलने लगा, यात्रा के लिए शुभ शकुन है। जा, बड़े लाला को बुला ला।

[रामचरण चलना चाहता है]

दिवाकर—और सुन, जब हम चलने लगें, तो तू दही, मछली कहना। देख, चूकना नहीं। जा, बुला ला।

[रामचरण शिवनाथ को बुला लाता है। दोनों चल देते हैं, पर रामचरण चुप। दिवाकरप्रसादजी पीछे घूमकर रामचरण को संकेत से स्मरण दिलाते हैं। वह फिर भी चुप। दिवाकरप्रसाद घूरते हैं, पर रामचरण फिर भी मौन ही है।]

दिवाकर—[सरोष] अबे कह।

रामचरण—दही म SSSS [छींक की स्थिति का मुँह फैलाकर] म म आ आ···आ क छीं [नाक पकड़ लेता है]

दिवाकर—[रामचरण के थप्पड़ मारकर सक्रोध] धत् तेरे की, नाश हो तेरा, सारी तपस्या चौपट कर दी। निकल मेरे घर से, इसी समय निकल। दुष्ट कहीं का, आस्तीन का साँप, बस, आँख के सामने से टल ही जा, नहीं तो··

[रामचरण जाता है]

दिवाकर—[शिवनाथ से] दाहिनी ओर भरा घड़ा, ये बेचारे ब्राह्मण हाथ में पुस्तक लिये कितनी देर से तपस्या-सी कर रहे हैं और इस दुष्ट ने न जाने कहाँ की दुश्मनी निभायी। अब इस समय रहने दो, गोधूलि-वेला में प्रस्थान करेंगे।

[शिवनाथ गम्भीर दृष्टि से केवल देखकर रह जाते हैं।]

—पटाक्षेप—

तृतीय दृश्य

[सेवा-सदन, मंगली लेटा है। राजनाथ एक गिलास मे दूध और एक तश्तरी मे कुछ खाने को लाता है।]

राजनाथ—दादा !

मंगली—[करवट बदलकर] हाँ, बेटा !

राजनाथ—लीजिये, जलपान कर लीजिये।

[गिलास और तश्तरी भूमि पर रखकर मगली को सहारा देकर उठाता है। बहुत ही सतर्क रहता है कि कहीं कोई घाव न दुख जाय। यों बहुत ही सँभालकर बिठा देता है। पीछे मसनद लगा देता है, फिर तश्तरी और गिलास सम्मुख रख देता है। मंगली खाने लगता है, राजनाथ अन्दर से पानी लाता है। मंगली खाकर दूध पी लेता है। राजनाथ तश्तरी और गिलास ले लेता है। गिलास धोकर उसमे पानी दे देता है। मगली कुल्ला करना चाहता है, पर कुछ असुविधा अनुभव करता है।]

राजनाथ—[लोटा सम्मुख कर] लोटे में कर दीजिये कुल्ला।

मंगली—[विवशतः लोटे में कुल्ला करके आह भरकर] अरे बेटा, हे भगवन्, जल्दी ही उठा ले मुझे।

राजनाथ—अरे दादा, क्या कष्ट है आपको ?

मंगली—मुझे क्या कष्ट बेटा, पर तुम सबके लिए भार जो बना हूँ।

राजनाथ—अरे नहीं दादा, हमे आपकी सेवा मे परम आनन्द मिलता है।

मंगली—अरे बेटा, मैं अछूत, फिर कोढ़ी, मेरा थूक तुम्हारे हाथ ! ओफ, अभाग्य जो न कराये, सो थोड़ा।

राजनाथ—अगर अब भी आपने अभाग्य अनुभव किया, तो वह हम सबका ही अभाग्य होगा।

मंगली—ऐसा न कहो बेटा, अभाग्य की क्या हिम्मत, जो तुम्हारे पास फटक सके। [नेत्र सजल हो आते हैं]

राजनाथ—अरे, आप तो आँसू बहाने लगे। आखिर बात क्या है काका ?

मंगली—कुछ भी नहीं बेटा !

राजनाथ—तो फिर ये आँसू क्यों ?

मंगली—बेटा, ये सड़क पर के आँसू नहीं।

राजनाथ—ऐं !

मंगली—हाँ बेटा, वे आँसू गये सो गये, अब वे लौटने के नहीं।

राजनाथ—तब ?

मंगली—ये आँसू प्रेम के, गर्व के, हर्ष के आँसू हैं बेटा !

राजनाथ—अरे दादा !

मंगली—हाँ बेटा, तुम सरीखे जियें, दुःख दिखाई ही न देगा; तो आँसू कैसे बहेंगे ?

राजनाथ—दादा, आप तो···।

मंगली—अरे सुनो बेटा, सारा भेद सुनो—

गीत

आँसू अब न बहेंगे।
बहकर पहुँचे दीनबन्धु तक, और कहाँ पहुँचेंगे—
आँसू अब न बहेंगे।
दीनबन्धु के दूत चल पड़े, घर-घर अलख जगाते।
दीन, बन्धु हैं दीनबन्धु के, यह नाता समझाते॥
दीनबन्धु-सा भाई जिनका, वे आहें न भरेंगे—
आँसू अब न बहेंगे।

मंगली—[सजल नेत्रों से] मैं असमर्थ, अपाहिज, क्या उऋण हो सकूँगा तुम सबसे ? बस, मेरी दुआ लगे, हज़ारी उमर पाओ बेटा ! खूब फलो-फूलो ।

[राजनाथ बरतन उठाकर जाता है]

—पटाक्षेप—

चतुर्थ दृश्य

[आलोक बाबू के बाग का बँगला। श्याम फावड़ा और कुदाल लेकर चलते ही हैं कि दिवाकरप्रसाद और शिवनाथ आ जाते हैं।]

श्याम—[फावड़ा और कुदाल रखकर तथा हाथ जोड़कर] प्रणाम।

[दिवाकरप्रसाद और शिवनाथ उत्तर मे हाथ जोड़ देते है]

दिवाकर—आलोक बाबू हैं?

श्याम—जी।

दिवाकर—मैं उनसे भेंट करना चाहता हूँ।

श्याम—वे गोड़ाई कर रहे हैं।

दिवाकर—तो जाकर भेज दो बेटा।

श्याम—क्षमा करें, वे काम छोड़कर न आ सकेंगे, आप प्रतीक्षा करें।

[एक चटाई बिछा देते है]

दिवाकर—राजनाथ है?

श्याम—जी, वह भी गोड़ाई कर रहे हैं।

दिवाकर—उसीको भेज दो जाकर।

श्याम—विचार तो सबका एक-सा ही है।

दिवाकर—तो क्या छुट्टी न दी जायगी?

श्याम—छुट्टी का प्रश्न नहीं, काम के समय काम छोड़ना अच्छा नहीं लगता किसीको।

दिवाकर—आप से भी मिलने मे?

श्याम—आप विराजिये, देखिये कहता हूँ जाकर। [जाते है]

दिवाकर—कितना हरा-भरा है बाग, जैसे नन्दन-कानन हो।

शिवनाथ—अपने पसीने से सींचते हैं आलोक बाबू, इसलिए।

दिवाकर—आलोक ने तो हद ही कर दी। इतने बड़े धन-कुबेर का

बेटा, इतना पढ़ा-लिखा, कलेक्टर, कमिश्नर बनते क्या देर लगती। मैं तो चकित हूँ, यह सब देख-सुनकर।

शिवनाथ—चकित होनेवाली बात ही है।

[राजनाथ आता है। आते ही शिवनाथ के चरणों पर गिरने को होता झुकता ही है कि शिवनाथ सँभालकर हृदय से लगा लेते हैं। राजनाथ के नेत्रों से अश्रुधार प्रवाहित होने लगती है।]

शिवनाथ—[राजनाथ के आँसू पोंछते हुए] अरे, यह क्या ?

राजनाथ—[अविरल अश्रु प्रवाहित करते हुए] भैया, भैया, ओफ !

शिवनाथ—रज्जन, तुम तो·· [आँसू पोंछते हैं]

राजनाथ—भैया, भैया, मुझे माफ कर दो, मैं आपको मुँह दिखाने योग्य नहीं, भैया··

शिवनाथ—तुम भी रज्जन।

राजनाथ—क्या-क्या नहीं कह डाला, क्या-क्या नहीं कर डाला, आह भैया !

शिवनाथ—शान्त हो रज्जन, भूल जाओ उन बातों को।

राजनाथ—कैसे भूल जाऊँ भैया, मेरी करतूतें प्रतिपल मुझसे टकराती हैं, सोते-जागते डराती हैं। वे कहती हैं, देखो, हम भीड़-की-भीड़ खड़ी हैं तुम्हारे ऊपर गवाही के लिए। आह भैया, कलेजा काँप उठता है याद करके।

शिवनाथ—मिट्टी डालो इन सब पर और··

राजनाथ—अरे भैया, आप भुला सकेंगे मेरे अपराध, मेरे पाप ?

शिवनाथ—विश्वास रखो, मेरे ध्यान में केवल तुम हो, तुम्हारी भूलें नहीं।

राजनाथ—[आह भरकर] ओफ !

शिवनाथ—बस, अब इधर की कुछ सुनाओ।

राजनाथ—सुनाऊँ क्या भैया, अपनी ही काली करतूतों से भयभीत होकर मैं हो रहा था पिस्तौल के हवाले, एक क्षण

पहले ही आलोक भैया हाथ न पकड़ लेते, तो गोली सीना पार कर जाती।

शिवनाथ—[सिहरकर] ऐं!

राजनाथ—जी, और इस अधम का इस शरीर से उद्धार हो जाता।

शिवनाथ—ओफ!

राजनाथ—यों आलोक भैया ने मुझे नया जन्म दिया, मुझे नये सिरे से गढ़ा, गढ़ा भी ऐसे कि मुझे कभी भी चोट न लगी, प्रसन्नता ही हुई।

शिवनाथ—बहुत अच्छे।

राजनाथ—बस, थोड़े में मेरी यही कहानी है।

दिवाकर—कोई बात नहीं बेटा, अब घर चलो। तुम्हारी माँ प्राण खोये दे रही है तुम्हारे बिना।

राजनाथ—जी!

दिवाकर—हाँ, तुम्हारी नौकरी भी निश्चित हो गयी।

राजनाथ—नौकरी!

दिवाकर—हाँ, नौकरी। उसके लिए बड़ी दौड़-धूप करनी पड़ी तुम्हारे भैया को। कई जगह घूस भी देनी पड़ी।

राजनाथ—नौकरी, फिर घूस देकर।

दिवाकर—कोई बात नहीं बेटा! बड़ी ही अच्छी नौकरी है, खूब ही ऊपरी आमदनी होगी उसमें, दो-तीन महीने में ही सारी घूस लौट आयेगी।

राजनाथ—ऐं!

दिवाकर—हाँ यही तो, काम भी कुछ नहीं। बस, बैठे राज्य करो बेटा!

राजनाथ—मैं यह राज्य न कर सकूँगा पिताजी!

दिवाकर—ऐं!

राजनाथ—जी, अब मैं किसीको धोखा नहीं देना चाहता।

दिवाकर—धोखा ?

राजनाथ—जी, जिस नौकरी में काम ही न करना पड़े, वह नौकरी नहीं, वह तो धोखा ही है, अपने लिए भी, औरों के लिए भी।

दिवाकर—तब क्या करोगे ?

राजनाथ—मैं करूँगा खेती, लगाऊँगा बाग।

दिवाकर—अच्छा !

राजनाथ—जी, आइये चलिये। मैं दिखाऊँ वहाँ के खेत और बाग। कितने आकर्षक, कितने कलात्मक, प्रदर्शनी भी लगी है पिताजी, उपज भी दुगुनी, तिगुनी, चौगुनी।

दिवाकर—[मुस्कराकर] अच्छा !

राजनाथ—जी, चलिये और देखिये, वहाँ की धरती की मुस्कान, वसन्त की किलकारी और प्रकृति की अठखेलियाँ आपको मंत्रमुग्ध कर देंगी पिताजी !

दिवाकर—बहुत अच्छे !

राजनाथ—और वहीं देखिये, मनुष्य के परिश्रम की आश्चर्यजनक रचना, उसकी बुद्धि और सूझ का सजीव चमत्कार।

[अकस्मात् घबराये-से श्याम का प्रवेश]

श्याम—[हाँफते से] बड़ी नाली फूट गयी, पानी बड़े ही वेग से ··सारे फावड़े ले चलो भाई, कहाँ हैं सब ?

राजनाथ—अन्दर।

श्याम—तो चलो।

राजनाथ—[चलते-चलते] पिताजी, आप जाइयेगा नहीं। भैया ··मैं अभी आया।

[राजनाथ और श्याम जाते हैं, दिवाकरप्रसादजी और शिवनाथ देखते रह जाते हैं।]

—पटाक्षेप—

पंचम दृश्य

[एक बँगला। एक सुसज्जित मेज के आसपास कई कुर्सियाँ पड़ी हैं। एक पर भूतपूर्व अंग्रेज कलेक्टर बैठा है, फोन की घण्टी बजती है।]

कलेक्टर—[रिसीवर उठाकर] हलो मिस्टर, गर्गजी का बँगला,—जी, मैं ही बोल रहा हूँ—हॉ-हॉ, आ जाइये—अरे नहीं, ऐसी बात नहीं—ऐं—[ठहाका मारकर हँसता है]—अरे, आप आ जाइये—कार भेज दूँ—ऐं—ठीक—ठीक—हॉ-हॉ—अच्छा—ठीक, यहीं से गिरजाघर भी चले चलेंगे—ठीक, ठीक—हॉ-हाँ—अच्छा—हॉ—

[रिसीवर रख देता है]

[थोड़ी ही देर में भूतपूर्व अंग्रेज सुपरिण्टेण्डेण्ट आता है]

सुपरि०—[हैट बगल में दबाकर] गुड मार्निंग सर।

कलेक्टर—[हाथ मिलाते हुए] गुड मार्निंग। [एक कुर्सी की ओर इंगित कर] विराजिये।

[सुपरिण्टेण्डेण्ट बैठ जाता है]

कलेक्टर—कहिये, कैसा लगा आज का भारत ?

सुपरि०—ठीक ही है।

कलेक्टर—देखा गांधी का चमत्कार, आपका अनुमान झूठा सिद्ध कर रहा है न ?

सुपरि०—क्यों, सब तो वही हो रहा है।

कलेक्टर—देख तो रहे हैं आप, मेकाले साहब के स्कूल-कॉलेज, बाबू बनाने के कारखानों की इमारत वही, शरीर वही, पर आत्मा बदल रही है, हृदय बदल रहा है।

सुपरि०—जी !

कलेक्टर—हाँ, अब पढ़े-लिखे युवक गाँवों की ओर बढ़ रहे हैं, कुछ तो प्रोफेसर, हेडमास्टर अपनी-अपनी नौकरी छोड़कर जा रहे हैं।

सुपरि०—ऐं !

कलेक्टर—हाँ, वे वहाँ बच्चों से लेकर बूढ़ों तक को शिक्षित करने के लिए नयी तालीम चला रहे हैं, उनकी मनुष्यता जगा रहे हैं। कोई वेतन नहीं, केवल रोटी-कपड़ा, सो भी जैसा कुछ दे दे गाँव।

सुपरि०—किन्तु··

कलेक्टर—किन्तु क्या, कैसी घोर तपस्या चल रही है यह, कैसा शुभ लक्षण है यह।

सुपरि०—आ। तो··

कलेक्टर—क्यों, देख तो रहे हो, गाँवों में उद्योग पनप रहे हैं, उत्पादन बढ़ रहा है, शिक्षा, सफाई, स्वास्थ्य सभी में प्रगति हो रही है। यह सब इन्हींकी बदौलत तो ?

सुपरि०—कितने कर रहे हैं ऐसा, सारे देश में उँगलियों पर गिन लीजिये।

कलेक्टर—प्रारम्भ तो हो गया ?

सुपरि०—हाँ, सो क्यों नहीं।

कलेक्टर—पहले एक, फिर कुछ, फिर असंख्य। प्रकृति का नियम भी तो यही है।

सुपरि०—तो क्या आपका विश्वास है कि आगे बहुत बढ़ जायँगे ?

कलेक्टर—अवश्य, गंगा निकाली है, तो समुद्र में मिलाकर ही मानेंगे। भगीरथ की सन्तान ठहरे न ?

सुपरि०—जी !

कलेक्टर—हाँ, वह दिन दूर नहीं, जब भारत के सपूत देश का हर गाँव आदर्श गाँव बना देंगे।

सुपरि०—मुझे तो शंका है इसमें।

कलेक्टर—क्या ?

सुपरि०—मानता हूँ, पढ़े-लिखे जवान गाँवों की ओर जा रहे हैं, पर जो पहुँचे हैं, उन्हें बड़े ही संकट उठाने पड़ रहे हैं।

कलेक्टर—एँ !

सुपरि०—जी हाँ, गाँव इनकी उमंग का पूरा आदर नहीं करता, कहीं-कहीं तो अनादर ही करता है। तो कितने दिन जिन्दा रहेगा इनका जोश ?

कलेक्टर—यही तो इनके जोश की कसौटी है। मेरा विश्वास है, ये जवान हर कसौटी पर खरे उतरेंगे, कैसा भी जहर निगलकर अपना जोश ठण्डा न पड़ने देंगे।

सुपरि०—जी !

कलेक्टर—और ये गाँव भी थोड़े ही दिन बाद इनसे सच्चा स्नेह करेंगे, इनका पूरा आदर करेंगे, इन पर निछावर रहेंगे।

सुपरि०—आखिर ये भार बनकर कब तक गाँव पर लदे रहेंगे ?

कलेक्टर—जब क्रान्ति अपने पैरों खड़ी हो जायगी, आप सोच भी न सकेंगे ऐसा।

[इसी समय एक अखबारवाला आता है]

अखबारवाला—ताजे समाचार, एक आने में, ताजे समाचार, भाषा-विवाद पर गोली चली, दस मरे, पैंतीस घायल, एक आने में, ताजे समाचार, एक आने में, एक आने में।

सुपरि०—ऐ अखबारवाले, देना एक अखबार।

[अखबारवाला अखबार देकर चला जाता है]

सुपरि०—[अखबार दिखाकर] यह देखिये।

कलेक्टर—देखूँ क्या, वह तो सुन ही लिया।

सुपरि०—मैं पहले ही कह चुका था कि इस देश में राष्ट्रीय चेतना न कभी रही है, न कभी रहेगी।

कलेक्टर—यह राष्ट्रीय चेतना का ही बिगड़ा रूप है, आगे चलकर सुधरेगा ही।

सुपरि०—जी !

कलेक्टर—हाँ, बंगाल के दर्द पर पंजाब सिसकता है, कन्या-कुमारी की आह पर हिमालय हिल उठता है, पूरी सहायता करता है।

सुपरि०—यह तो हम विदेशियों की देखादेखी।

कलेक्टर—यह कैसे ?

सुपरि०—यहाँ के अकाल, यहाँ की बाढ़ पर विदेशों से काफी मदद मिलने लगती है, तो यहाँ के लोग लजाकर करने लगते हैं वैसा।

'कलेक्टर—नहीं, शरीर में चोट लगने पर अपने-आप हाथ वहाँ पहुँच जाता है, सारा शरीर दुखता है, ऐसा ही होता है यहाँ।

सुपरि०—जी !

कलेक्टर—हाँ, सीमा पर जरा-सी अशान्ति हुई, बच्चा-बच्चा चौंक उठा, तिलमिला उठा। नौजवान खून से हस्ताक्षर करके नेताओं के पास भेजने लगे, देश पर मर-मिटने का संकल्प भेजने लगे।

सुपरि०—[मुस्कराकर] असल मे आपको यहाँ की बुराई भी अच्छाई ही दिखाई देती है।

कलेक्टर—[मुस्कराकर ही] और आपको यहाँ की अच्छाई भी बुराई ही दिखाई देती है।

[दोनों ठहाका मारकर हँसने लगते हैं]

—पटाक्षेप—

षष्ठ दृश्य

[आलोक बाबू के बागवाला बँगला। आलोक और श्याम फावड़ा लिये आते हैं। वे फावडे रख देते हैं। इसी समय दिवाकर आते हैं। आलोक और श्याम हाथ जोड़कर उन्हे प्रणाम करते हैं। वे भी उत्तर मे हाथ जोड़ देते हैं।]

श्याम—[आलोक से दिवाकरप्रसाद के लिए] ये राजनाथ भाई के पिताजी हैं।

आलोक—भाई के पिता, तो अपने भी पिता ही। [दिवाकरप्रसाद और शिवनाथ से] आइये, विराजिये।

[दिवाकरप्रसाद और शिवनाथ को उचित आसन देकर स्वयं भी बैठ जाते हैं।]

आलोक—[घड़ी देखकर] दूध तो अभी गरम हुआ नहीं होगा ?

श्याम—[घडी देखकर] अभी आधे घण्टे की देर है।

आलोक—आज तो काफी काम हुआ।

श्याम—आप साथ होते हैं, तो काम अधिक होता ही है।

आलोक—मैं तो किसीसे कुछ कहता नहीं।

श्याम—प्रभाव कहने का नहीं, करने का पड़ता है।

आलोक—[मुस्कराकर] अच्छा !

दिवाकर—बेटा आलोक, तुम यह सब क्या कर रहे हो ?

आलोक—जी !

दिवाकर—हाँ, इतने अधिक पढ़े-लिखे, लक्ष्मीपुत्र, बैठे राज्य करो। तुम्हें कमी किस बात की है ?

आलोक—ऐं !

दिवाकर—हाँ वेटा, तुम करते हो खेती, अपने हाथ हल, फावड़ा, कुदाल, यह ठीक नहीं।

आलोक—खेती भी तो होनी चाहिए।

दिवाकर—खेती के विना भला कैसे काम चलेगा, पर तुम्हें शोभा नहीं देती।

आलोक—[मुस्कराकर] किसे शोभा देती है ?

दिवाकर—जो कर रहे हैं।

आलोक—उनके वाद ?

दिवाकर—वह तो होती ही रहेगी।

आलोक—कैसे ?

दिवाकर—क्यों ?

आलोक—जी, कलेक्टर, डिप्टी कलेक्टर, कानूनगो, लेखपाल, थानेदार, सिपाही, पतरौल, चपरासी आदि वड़े से छोटा कोई भी एक, केवल एक स्थान रिक्त हो, तो उसके लिए कितने उम्मीदवार !

दिवाकर—अरे वेटा, हजारों, लाखों।

आलोक—पर यदि एक किसान मर जाय, तो उसकी जगह भरने के लिए, उसका चार्ज लेने के लिए, उसकी जगह हल-फावड़ा लेकर खेत में उतरने के लिए कितने तैयार होते हैं ?

[दिवाकरप्रसादजी चुप]

आलोक—वताइये पिताजी !

दिवाकर—क्या वताऊँ वेटा, इसके लिए तो एक भी नहीं।

आलोक—जी !

दिवाकर—हाँ वेटा, हर पढ़ा-लिखा लड़का खेती मे अपना अपमान अनुभव करता है।

आलोक—किसान का लड़का ?

दिवाकर—वह भी खेती करना नहीं चाहता। माँ-बाप भी अपने लड़के को खेती में नहीं डालना चाहते। सभी नौकरी के लिए व्याकुल हैं।

आलोक—जी!

दिवाकर—सब-के-सब पढ़ते ही चले जा रहे हैं। कहाँ से आयें इतनी नौकरियाँ ? तो बेकारी भी बढ़ती चली जा रही है।

आलोक—एँ!

दिवाकर—और बेकारी में कोई काम नहीं, तो करने लगे उत्पात—जो भी जी में आ गया।

आलोक—जी! [थोड़ी देर मे] किसान-मजूरों की वर्तमान पीढ़ी कितने दिन चलेगी ?

दिवाकर—अमर थोड़े ही है, अधिक-से-अधिक पचीस-तीस वर्ष, पचास वर्ष।

आलोक—तब कौन करेगा खेती, कौन कूटेगा सड़क पर कंकड़, कौन ढोयेगा ईंट-गारा, कौन बनायेगा मकान, सोचिये तो पिताजी !

दिवाकर—[लम्बी साँस लेकर] ओफ !

आलोक—आपकी तो पार हो जायगी। सम्भव है, हमारी पीढ़ी की भी पार हो जाय, पर भावी सन्तान कैसे जियेगी पिताजी ?

दिवाकर—[सिर पकड़कर] मेरा तो सिर चकराने लगा बेटा! जान पड़ता है, प्रलय आ रहा है।

आलोक—प्रलय आ नहीं रहा है पिताजी, हम स्वयं ला रहे हैं प्रलय।

दिवाकर—[लम्बी साँस लेकर] सम्भव है, एग्रीकल्चर कालेज कुछ सँभाल लें।

आलोक—एग्रीकल्चर कॉलेजों में किसानों के डाइरेक्टर ढाले जाते हैं, किसान नहीं।

दिवाकर—खाद्य-आन्दोलनों का तो उपयुक्त प्रभाव पड़ ही सकता है ?

आलोक—पिताजी, अन्न आन्दोलनों से, नारों या धरनों से, मोटरों की भर्राहट या भों-भों से नहीं उपजेगा, वह उपजेगा खेत से, हल लेकर खेती करने से।

दिवाकर—ठीक कहते हो बेटा !

आलोक—फिर आज उपज भी नहीं बढ़ रही है।

दिवाकर—अवश्य।

आलोक—क्या कभी आपने सोचा है, ऐसा क्यों ?

दिवाकर—न बेटा, इधर तो मेरा ध्यान भी नहीं गया कभी।

आलोक—पहला कारण तो यह कि आज जो खेती करते हैं, वे बेमन, वश चले तो अभी तुरत छोड़ दें।

दिवाकर—इसमें क्या सन्देह ?

आलोक—दूसरा कारण यह कि खेती है एक शास्त्र, एक विज्ञान, पर जो आज खेती करते है, वे इस शास्त्र, इस विज्ञान को जानते ही नहीं।

दिवाकर—हॉं, वे क्या जानें बेचारे, पूरे अपढ़।

आलोक—इसलिए मैंने खेती अपनायी, पुण्यकर्म समझकर अपनायी। सुनाइये तो श्यामजी अपना वह गीत।

श्याम—जी !

गीत

पुण्य कर्म है, पुण्य धर्म है,
हम खेती कर पायें।
सोना-चॉंदी हीरा-मोती, बिना अन्न सब माटी।
सदा गुलाम अन्न के ये सब, नित्य चरण रज चाटी॥

अन्नदेव को सिद्ध करें हम, ये गुलाम ललचायें—
ललचाकर रह जायें—हम०—
धरती पर कर घोर परिश्रम, अधिक अन्न उपजायें।
करे कपास आस जब पूरी, तब धीरज घर पायें॥
सारा जग खा-पीकर सोये, पहन-ओढ़ चल पाये।
हम भी तब सुख पायें—हम०—
बोयें फूल अनोखे चोखे, चोखे फल उपजायें।
भूख-प्यास हर जाय देखकर, ऐसे बाग लगायें॥
अपना शुचि सिंगार निरखकर, धरती माँ मुस्काये।
हम भी तब पुलकायें—हम०—

महात्माजी—[अकस्मात् आकर] शाबाश बेटा, शाबाश! मैं बड़ी देर से खड़ा सुन रहा था यह सब, बहुत अच्छे!

[सब हाथ जोड़े उठकर महात्माजी को प्रणाम करते हैं, फिर सब यथास्थान बैठ जाते है।]

दिवाकर—[आलोक से] बेटा, तुम्हारे यहाँ के खेत और बाग देखकर तो मैं अचम्भे में पड़ गया।

आलोक—जी!

दिवाकर—हाँ, तुमने वसन्त को इतना कैसे रिझा लिया कि वह सदा के लिए यहाँ टिक गया?

आलोक—यह सब वैज्ञानिक ढंग और परिश्रम का ही फल है।

दिवाकर—हाँ, मनुष्य का पसीना जो न कर दिखाये वह थोड़ा, पर न जाने क्यों सब नौकरी ही करना चाहते हैं, खेती नहीं।

महात्माजी—कौन करना चाहते हैं नौकरी?

दिवाकर—जितने भी पढ़कर निकलते है, सभी।

महात्माजी—नहीं, ये नौकरी भी नहीं करना चाहते।

दिवाकर—तब ?

महात्माजी—असल में ये कुछ नहीं करना चाहते ।

दिवाकर—जी !

महात्माजी—हाँ, नौकरी माने सेवा करना, दिया गया दायित्व ईमानदारी से निभाना । बोलो, कौन करता है ऐसा ?

दिवाकर—कोई नहीं स्वामीजी ।

महात्माजी—सारा भ्रष्टाचार केवल इसीलिए तो ?

दिवाकर—ठीक ही कह रहे है आप ।

महात्माजी—इसलिए हमे ऐसे हीरे गढ़ने पड़ेंगे, जो जीवन के हर क्षेत्र में हर कसौटी पर खरे उतरें ।

दिवाकर—पर महाराज, इन खरे हीरों का मूल्य खेती मे कुछ, उद्योगो मे कुछ और अफसरी मे कुछ और ही होगा, बड़ा ही अन्तर होगा, तब ये खरे हीरे भी खेती की ओर क्यों उत्साहित होगे ?

महात्माजी—ठीक कहते हैं आप । हमें इन मूल्यों में समानता लानी ही होगी ।

दिवाकर—इस ओर तो सरकार को ही कुछ करना चाहिए ।

महात्माजी—सरकार ने तो आर्थिक विषमता मिटाने और जीवन-मूल्य बदलने की घोषणा कर ही दी है, हमे भी इस घोषणा के अनुकूल बनना चाहिए ।

दिवाकर—हम भला कैसे बन सकते हैं ?

महात्माजी—जैसे यहीं, इस गाँव में बैठा यह आलोक बन रहा है । क्या यह खरा हीरा बाजार मे अपना अधिक मूल्य नहीं चुका सकता ?

दिवाकर—अरे महाराज, इन्हें क्या, चाहे जब कलेक्टर, कमिश्नर बनकर बैठ जाते ।

महात्माजी—इस खरे हीरे ने कितनी बड़ी आहुति दी । आज देश

ऐसी ही आहुतियों की ओर टकटकी लगाये है। ऐसी ही आहुतियाँ खरे हीरो का निर्माण करेंगी, जीवन-मूल्य बदल देंगी।

दिवाकर—जी।

महात्माजी—ऐसे ही खरे हीरे जीवन के हर क्षेत्र में कर्मवीर और ईमानदार सिद्ध होगे।

दिवाकर—अवश्य।

महात्माजी—मैं तो ऐसे हीरे के लिए कहूँगा कि—

गीत

तूने जीना जान लिया है।
जीवन भी पहचान लिया है॥
खेती जगती का जीवन है, दिन-दिन गिरती जाती।
गिर जाने के भय से तूने, दौड़ अड़ा दी छाती॥
बहा पसीना धरती पिघली, फिर खेती लहरायी।
सभी जियेंगे, सुखी रहेंगे—
तूने वह श्रमदान किया है—तूने०—
दीन दुखी का दर्द देखकर, तू आँसू भर लाया।
उनकी आह कराह वेदना, तू न कभी सह पाया॥
तूने लिया मनुज का ओहदा सब ओहदे ठुकराये।
मनुज मात्र की सेवा ही को—
तूने जीवन-दान किया है—तूने०—

आलोक—अरे बाबा, यों मेरी प्रशंसा कर कब तक मुझे लज्जित करते रहेगे?

महात्माजी—समझता हूँ बेटा कि तुम्हें अपनी प्रशंसा अच्छी नहीं लगती, पर करूँ क्या, हृदय उमड़ता है, तो उगल देता है सब।

दिवाकर—[आलोक से] मैं घर जाना चाहता हूँ बेटा···

आलोक—[उठकर] अच्छी बात, थोड़ी देर रुकिये, मैं अभी आया। [जाते हैं]

महात्माजी—[दिवाकरप्रसाद से] कुछ समय ठहरकर देख लेते, यहाँ खेती, उद्योग, गोपालन आदि सब कुछ मिल-जुल-कर करते हैं।

दिवाकर—जी !

महात्माजी—गाँव की सारी खेती का मालिक गाँव, सारे उद्योगों का मालिक गाँव, यहाँ की उन्नति का एक विशेष कारण यह भी है। प्रकृति ही बदल गयी यहाँ की।

दिवाकर—ऐं !

महात्माजी—हाँ, यहाँ के आतंकवादी, जो अपने पशु सदा आवारा ही रखते थे, अब बँधे रखते हैं। अब तो किसीके लिए कोई भी खेत पराया नहीं, सबकी सब पर संतान सरीखी ममता है।

[आलोक आते हैं, साथ में राजनाथ है। राजनाथ बायें कन्धे पर कुदाल रखे है, दाहिने हाथ में चरखा लिये है, बगल में एक पुस्तक दबाये है।]

आलोक—[दिवाकरप्रसाद से] मैं लेने गया था आपके लिए यह एक भेंट। लीजिये, स्वीकार कीजिये।

[दिवाकरप्रसाद आगे बढ़ते हैं]

महात्माजी—[दिवाकरप्रसाद से] रुकिये, यह भेंट स्वीकार करने के पूर्व कुछ मेरी भी सुनिये।

[दिवाकरप्रसाद महात्माजी की ओर देखने लगते हैं]

महात्माजी—[राजनाथ की ओर इंगित कर] इस सन्तान के बहाने भगवान् ने आपको अपनी एक धरोहर, एक भेंट ही दी थी।

दिवाकर—अवश्य महाराज।

महात्माजी—तब यह भेट परम पवित्र थी, सहज शुद्ध थी।

दिवाकर—जी !

महात्माजी—भगवान् ने आशा की थी कि यह भेट आप सँभाल-कर, सुधारकर सुरक्षित रखेंगे। यदि सुधार न कर सके, तो कम-से-कम बिगाड़ेंगे तो नहीं ही।

दिवाकर—जी !

महात्माजी—क्योंकि यह भेट आपको न केवल आपके लिए, वरन् आपके माध्यम से देश दुनिया सबके लिए दी गयी।

दिवाकर—जी।

महात्माजी—पर आपकी देखरेख में, आपके आचरण के प्रभाव में इसकी पवित्रता कितनी पवित्र रह पायी, इसकी शुद्धता कितनी शुद्ध रह पायी ?

[दिवाकरप्रसाद महात्माजी की ओर देखने लगते हैं]

महात्माजी—इस प्रश्न पर मेरे सामने मौन रह सकते हैं, पर भगवान् के सामने आपको इसका जवाब देना ही होगा।

दिवाकर—[लम्बी साँस लेकर] ओफ !

महात्माजी—अब फिर मिल रही है आपको यह भेट। मेरा विश्वास है—पूर्णतया निर्मल, पवित्र और शुद्ध।

दिवाकर—जी, सब कृपा है आलोक बाबू की।

महात्माजी—मैं चाहूँगा, यदि आप इसे शुद्ध व पवित्र रख सकें, तब तो स्वीकार करें, अन्यथा नहीं।

[दिवाकरप्रसाद शिवनाथ की ओर देखने लगते हैं]

महात्माजी—[थोड़ी देर में] क्यों ठिठक गये ?

शिवनाथ—[आगे बढ़कर] मैं हूँ इसका बड़ा भाई, कानूनगो, हजारों की घूस ले डाली। यों इसके लिए बहुत बड़ा दोषी रहा मैं।

महात्माजी—ऐं !

शिवनाथ—जी, स्वामीजी, पर अब शपथ लेता हूँ कि मैं घूस लेना हराम समझूँगा, अपना दायित्व पूरी ईमानदारी से निभाऊँगा। यों मैं स्वीकार करता हूँ यह भेट। [आगे बढ़ते हैं]

आलोक—भाईजी, अच्छा होता, यह भेट पिताजी ही स्वीकार करते।

दिवाकर—मै तो स्वीकार करूँगा ही।

महात्माजी—बेटे के प्रति ममता के आवेश मे ?

दिवाकर—नहीं पूज्य, भलीभाँति सोच-समझकर।

महात्माजी—[मुस्कराकर] अच्छा !

दिवाकर—जी हाँ, मैंने पैसे के लिए न जाने कितने प्रपंच किये, कितने पाप किये। सन्तान को भी वैसा ही बनाना चाहा। [मस्तक पकड़कर] ओफ !

महात्माजी—न भी चाहते तो क्या, सन्तान पर तो उसका प्रभाव पड़ता ही।

दिवाकर—जी, इसी अपने बड़े लड़के को घूस के लिए उत्साहित करता था मैं।

महात्माजी—तब ?

दिवाकर—अब मै [राजनाथ की ओर इंगित कर] इसीके परामर्श से चलूँगा। सम्भव है, यों कुछ उद्धार हो जाय मेरा।

महात्माजी—[मुस्कराकर] हृदय की धड़कन से पूछ लिया है ?

दिवाकर—पूछा क्या, संकल्प ही कर लिया है। मेरी एक-एक साँस साक्षी रहेगी इसकी।

महात्माजी—भगवान् करे—अपने परिवार के लिए, अपने गाँव के लिए, अपने देश के लिए परम मंगलकारी सिद्ध हो यह एक भेट।

दिवाकर—भगवान् से प्रार्थना है कि वह नयी तालीम की ज्योति, जो मनुष्य को मनुष्य बना देती है, गाँव-गाँव जगा दे, ताकि हर बाप पा सके ऐसी भेंट !

महात्माजी—बहुत ठीक, अब आप···[राजनाथ की ओर इंगित करते हैं]

[देखते-देखते दिवाकरप्रसाद राजनाथ का आलिंगन कर लेते है। शिवनाथ भी धैर्य सा खोकर जा लिपटते हैं।]

—पटाक्षेप—



सर्वोदय तथा भूदान-साहित्य

पुस्तक	मूल्य
धम्मपदं	२)
गीता-प्रवचन १) सजिल्द	१॥)
शिक्षण-विचार	१॥)
आत्मज्ञान और विज्ञान	१)
सर्वोदय-विचार स्वराज्य-शास्त्र	१)
ग्रामदान	१)
लोक-नीति	१।)
स्त्री-शक्ति	॥।)
भूदान-गंगा (छह खंड)	९)
ज्ञानदेव-चिंतनिका	१)
शांति-सेना	॥)
कार्यकर्ता-पाथेय	॥)
गुरुबोध	१॥)
साहित्यिकों से	॥)
साम्य-सूत्र	।=)
भाषा का प्रश्न	।)
जय जगत्	।)
सर्वोदय-पात्र	।)
भगवान् के दरबार में	।)
गाँव-गाँव में स्वराज्य	=)
सर्वोदय के आधार	।)
एक बनो और नेक बनो	=)
गाँव के लिए आरोग्य-योजना	=)
व्यापारियों का आवाहन	।)
आदिवासियों से	।)
समग्र ग्राम-सेवा की ओर [तीन खंडों में]	५॥)
शासन-मुक्त समाज की ओर	॥)
नयी तालीम	॥)
बुनियादी शिक्षा-पद्धति	॥)
ग्राम-स्वराज्य : क्यों और कैसे ?	=)॥
संपत्तिदान-यज्ञ	॥)
व्यवहार-शुद्धि	।=)
गाँव-आन्दोलन क्यों ?	२॥)
गांधी-अर्थ-विचार	१)
स्थायी समाज-व्यवस्था	२॥)
ग्राम-सुधार की एक योजना	॥।)
सर्वोदय-दर्शन	२)
दादा की नजर से लोकनीति	॥)
सत्य की खोज	१॥)
माता-पिताओं से	।=)
बालक सीखता कैसे है ?	॥)
बोलती घटनाएँ [चार भाग] प्रत्येक	॥)
नक्षत्रों की छाया में	१॥)
चलो, चलें मँगरौठ	॥।)
भूदान-गंगोत्री	२॥)
भूदान-आरोहण	॥)
सर्वोदय-विचार	॥।)
श्रम-दान	।)

धर्म-सार |)
स्थितप्रज्ञ-लक्षण |)
ग्रामदान क्यों ? १|)
भूदान-यज्ञ : क्या और क्यों ? १||)
यात्रा के पथ पर ||)
सफाई : विज्ञान और कला |||)
सुन्दरपुर की पाठशाला |||)
गो-सेवा की विचारधारा ||)
समाजवाद से सर्वोदय की ओर |≈)
सर्वोदय का इतिहास और शास्त्र |)
सर्वोदय-संयोजन १)
वर्ग-संघर्ष ||≈)
गाँव का गोकुल |)
शोषणमुक्ति और नव समाज ||≈)
भूदान से ग्रामदान ≈)
पूर्व-बुनियादी ||)
एशियाई समाजवाद १||)
लोकतान्त्रिक समाजवाद १||)
बच्चों की कला और शिक्षा ८)
गांधीजी क्या चाहते थे ? ||)
भूदान-पोथी |)
सर्वोदय की सुनो कहानी ! [पाँच भाग] १|)
किशोरलाल भाई की जीवन-साधना २)

गुजरात के महाराज
जाजूजी : जीवन और साधना
अन्तिम झाँकी
ग्रामराज क्यों ?
ग्राम-स्वराज्य
प्राकृतिक चिकित्सा-विधि
बापू के पत्र
ताई की कहानियाँ
विनोबा-संवाद
सत्याग्रही शक्ति
जीवन-परिवर्तन [नाटक]
कुलदीप [नाटक]
प्रायश्चित्त [नाटक]
चन्द्रलोक की यात्रा [नाटक]
एक भेंट [नाटक]
सुधरे हुए खेती के औजार
गो-उपासना
घर घर मे गाय
कुष्ठ-सेवा
मेरा जीवन-विकास
अहिंसात्मक प्रतिरोध
प्यारे बापू [तीन भाग]
तपोधन विनोबा
खाद और पेड़-पौधों का पोषण
जापान की खेती